नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—६५

रीतिकालीन रसशास्त्र

लेखक
डा० सच्चिदानंद चौधरी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी

प्रथम संस्करण

सं० २०२६
११०० प्रतियाँ

मूल्य [illegible] रुपये

मुद्रक

शंभुनाथ वाजपेयी,
नागरीमुद्रण, वाराणसी

समर्पण

जिसका करुणाकण ही मेरे जीवन की निधि है, उसी 'सदार्द्रचित्ता' माता के मंगलमय चरणों में—वाचिक पुष्पों की यह एक भावनामयी अंजलि।

जैसो सुख है ब्रह्म को, मिले जगत् सुधि जाति।
सोई गति रस में मगन, भये सुरस नौ भाँति।।

—कुलपति, रसरहस्य।

अलंकार शब्दार्थ के, फूल फलनि आमोद।
मधुर सुजसरस अमरतरु, अमर अमी रसमोद।।

—देव, शब्दरसायन।

रस विन भाव, न भाव विन रस, यह लख्यौ विसेष।
स्वादु विसेपहिं तें सबै, भाव प्रभृति रस लेख।।

—कुमारमणि, रसिकरसाल।

सुनि कवित्त को चित्र मधि, सुधि न रहे कछु और।
होइ मगन वहि मोद में, सो रस कहि सिरमौर।

—सोमनाथ, रसपीयूषनिधि।

जा हिय प्रीत न सोक है, हँसी न उत्सह ठान।
ते बातें सुन क्यों द्रवै, दृढ़ ह्वै रहै पषान।।

—भिखारीदास, काव्यनिर्णय।

प्रकाशकीय

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी अपनी शास्त्रविज्ञान ग्रंथमाला में भाषा एवं शास्त्रविषयक अनुशीलनपरक ग्रंथो का प्रकाशन करती आई है। इस ग्रंथमाला में हिंदी व्याकरण, व्यंजना और नवीन कविता, हिंदी शब्दानुशासन, रसमीमासा, अर्थतत्व की भूमिका, लक्षणा और उसका हिंदी काव्य में प्रसार, सूत्रशैली और अपभ्रंश व्याकरण एवं हिंदीभाषा पर फारसी एवं अंग्रेजी का प्रभाव जैसे गंभीर ग्रंथों का प्रकाशन किया जा चुका है। इस ग्रंथमाला मे प्रकाशित होनेवाला यह नवाँ पुष्प है।

इस ग्रंथ के दो खंड हैं। प्रथम खंड में रीतिकालीन रसशास्त्र के अंतर्गत नायिकाभेद आदि का विवेचन बहुत ही सरल भाषा एवं सुसंबद्ध प्रणाली से प्रस्तुत किया गया है। दूसरे खंड मे विभिन्न रीतिकालीन रसशास्त्रियों की काव्यात्मक रीतिरचनाओ का विभिन्न विषयात्मक वर्गीकरण के अंतर्गत संकलन किया गया है। अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत विषयसंबद्ध विशेष अवतरणो का समावेश कर दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय के अध्येताओ के लिये इस कारण विशेष उपयोगी है कि इसमे एक साथ ही विभिन्न आचार्यों का तद्विषयक दृष्टिकोण समग्रतः यथास्थान उपलब्ध हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं, सुधी लेखक ने इसे रीतिकालीन रससंबंधी आलोचनात्मक कोश के रूप मे उपस्थित करके हिंदी के इस अंग की पुष्टि में यथेष्ट सहयोग प्रदान किया है।

आशा है, इससे रीतिकालीन रस विवेचन संबंधी अनुशीलन एवं विवेचन करनेवाले आलोचको और शोधकर्ताओ को सहायता प्राप्त होगी।

२० मार्गशीर्ष,—संवत्
२०२६ वि०

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशनमंत्री

पुरोवाक्

हिंदी साहित्य के रीतिकाल का वैशिष्ट्य यह है कि उसका महत्त्व काव्य की दृष्टि से भी है और शास्त्र की दृष्टि से भी। विद्वानों ने उभयथा उसका मूल्यांकन किया है किंतु पुनराख्यान की इयत्ता नहीं होती। आनंदवर्धन ने काव्य के प्रसंग में कहा है कि—

न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभागुण·।

—यदि प्रतिभा हो तो काव्य के विषय का अंत नहीं है।

यह कथन हलके से परिवर्तन के साथ शास्त्र के प्रसंग में भी सही है—

न शास्त्रार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभागुणः।

—यदि प्रतिभा हो तो शास्त्र के विषय का अंत नहीं है।

डा० सच्चिदानंद चौधरी हिंदी और संस्कृत के अभिनिविष्ट विद्वान् हैं, साथ ही प्रतिभा के धनी। आपका संस्कृतज्ञान परंपरागत पद्धति से पुष्ट तथा आधुनिकता के आलोक से दीप्त है। हिंदी के उच्चतम अध्यापन एवं शोध-निर्देशन के दीर्घ अनुभव ने आपकी तत्त्वाभिनिवेशी दृष्टि को उदार और मर्मग्राही बना दिया है। रीतिकालीन साहित्य पर गंभीर विचार के लिये जो शास्त्रीय उपलब्धि अपेक्षित है, वह डा० चौधरी में पूर्णतः विद्यमान है। आप सहृदय भी हैं और सुधी भी। रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रस्तुत रसनिरूपण को आपने श्रमपूर्वक अध्येताओं तथा अनुसंधाताओं के लिये एकत्र सुलभ कर दिया है। इसे रीतिकालीन रसनिरूपण का कोश कहना असगत न होगा। प्रारंभ की वैदुष्यपूर्ण भूमिका में विवेच्य विषय की समीचीन तथा तटस्थ मीमांसा है।

मेरा विश्वास है कि यह ग्रंथ रीतिकाल के एक महत्त्वपूर्ण अंग को समझने में उपादेय और सहायक सिद्ध होगा। मैं इसका स्वागत करता हूँ और डा० चौधरी को साधुवाद देता हूँ।

देवेंद्रनाथ शर्मा,
आचार्य तथा अध्यक्ष,
हिंदी विभाग
पटना विश्वविद्यालय

पटना
१६-१२-६६

प्राक्कथन

रीतिकालीन रसशास्त्र के संबंध मे या तो अत्युक्तिपूर्ण शब्दो में उसकी गरिमा का बखान किया जाता है या फिर बड़े ही प्रकर्षपाती शब्दो में उसकी हीनता का प्रतिपादन किया जाता है। आशय यह कि दो सौ वर्षों के काल-फलक पर फैले हुए इन सिद्धातग्रंथों के बारे में संतुलित दृष्टिकोण अभी तक नहीं बन पाया है। इसका कारण भी स्पष्ट है। सामान्य पाठको को रीतिकालीन रसशास्त्र से संबद्ध ये दुर्लभ ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। इनमे से कुछेक तो अभी भी हस्तलिखित रूप में संग्रहालयों मे पड़े हैं और जो अल्पाधिक प्रकाशित भी हुए हैं वे प्रकाशन की प्राचीनता के कारण साभान्यतः दुष्प्राप्य हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी की मध्यकालीन रसचिंतना के विषय में जो धारणा बनायी जाती है वह या तो सुनी सुनायी बातों के आधार पर या फिर रीतिकाल पर लिखे गए इतिहास ग्रंथों और आलोचनात्मक संदर्भग्रंथों को उपजीव्य बनाकर। निष्कर्ष यह कि हिंदी के रसाभिनिवेशी पाठको की धारणा का आधार प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होता है। इस कमी को दूर करने की दिशा मे अभी तक किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ।

पिछली दशाब्दी के भीतर रीतिकालीन कुछेक आचार्यों की ग्रंथावलियाँ भी नागरीप्रचारिणी सभा, (काशी), हिंदुस्तानी एकेडेमी (इलाहाबाद) तथा गंगा ग्रंथागार (लखनऊ) आदि प्रकाशनसंस्थाओं द्वारा प्रकाश में लाई गई हैं किंतु उनकी संख्या भी अत्यल्प है। प्रायः अभी तक केशवग्रंथावली, मतिराम-ग्रंथावली, भिखारीदासग्रंथावली, पद्माकर ग्रंथावली ये दो चार ग्रंथावलियाँ ही प्रकाशित हुई हैं। इधर हाल में केशव, देव, मतिराम, भिखारीदास प्रभृति कतिपय आचार्यो के संबंध मे विभिन्न अनुसंधानकर्त्ताओ द्वारा शोधप्रबंध भी लिखे गए हैं। इन प्रबंधो में उन आचार्यों के आचार्यत्वनिर्धारण के प्रसंग में उनकी रससिद्धातीय मान्यताओ पर भी प्रकाश डाला गया है। इस क्रम में कभी पादटिप्पणी के रूप में और कभी विवेचन के अंतराल में उन आचार्यों के कतिपय सैद्धातिक उद्धरणों को भी प्रस्तुत किया गया है। विलक्षणता यह है कि ये शोधग्रंथ भी प्राय. उन्हीं आचार्यों पर लिखे गए हैं जिनकी ग्रंथावलियो का ऊपर उल्लेख किया गया है। फलतः प्रकाशित और सुलभ रससामग्री की दिशा में कोई अभिवृद्धि नहीं हो पाई है। रीतिकालीन समस्त रससामग्री का एकत्र संकलन और संपादन तो दूर का रहा! अभी तक इस दिशा में जो प्रयास

हुआ है वह रीतिकाल की अजस्र रसधारा में से दो चार घड़े उलीच लेने जैसा ही। तत्वतः इसी अभाव को दूर करने के हेतु मैंने "रीतिकालीन रसशास्त्र" लिखने की योजना बनायी। प्रस्तुत प्रयास उसी की परिणति है।

इस ग्रंथ के दो खंड हैं। प्रथम खंड के अंतर्गत 'रीतिकालीन रसशास्त्र की भूमिका' प्रस्तुत की गई है। इस भूमिका में रीतिकालीन रसशास्त्र से संबद्ध आवश्यक बातें प्रतिपादित की गई हैं। आरंभ में रससिद्धांत के महत्त्व और और उसकी शाश्वतिकता को दिखा देने के उपरांत संस्कृत काव्यशास्त्र की संक्षिप्त रसधारा, रीति काव्यशास्त्र का उद्भव और विकास, रीतिकाल के प्रमुख काव्यसंप्रदाय, रीतिकालीन विवेचन की सीमाएँ और रीतिकालीन रसविवेचना के विशिष्ट अंश (जिसके अंतर्गत रसस्वरूप और अभिव्यक्ति, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, स्थायी भाव, रसभेद और रसदोष पर क्रमशः प्रकाश डाला गया है) आदि प्रस्तुत किए गए हैं। अंत में इस युग की रसचिंतना का सर्वेक्षण भी किया गया है।

ग्रंथ के दूसरे खंड में 'रीतिकालीन रसशास्त्र' के मूल अंश उपस्थापित किए गए हैं। इस खंड को भी पृथक् पृथक् अध्यायों में विभक्त कर क्रमशः रसस्वरूप और अभिव्यक्ति, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव, स्थायीभाव, रसभेद और रसदोष से संबद्ध रीतिकालीन ग्रंथों के मूल उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है। इन अध्यायों में जिन आचार्यों के ग्रंथों के उद्धरण संगृहीत किए गए हैं उनके नाम हैं—केशव, चिंतामणि, तोष, मतिराम, कुलपति, देव, कुमारमणि भट्ट, सोमनाथ, भिखारीदास; रसलीन, रूपसाहि, शिवनाथ, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, वेनी प्रवीन, करन कवि, प्रताप साहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, रसिकबिहारी, नंदराय और लछिराम आदि। ग्रंथ के अंत में तीन परिशिष्ट भी संलग्न हैं। प्रथम परिशिष्ट में रीतियुग के परवर्ती जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' और बिहारीलाल भट्ट की मूल रससामग्री का संकलन है और द्वितीय परिशिष्ट में बिहारीलाल भट्ट के द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक नायिकाभेदों के मूल उद्धरण संगृहीत हैं। तृतीय परिशिष्ट के अंतर्गत रीतिकालीन रसग्रंथो का परिचयात्मक विवरण भी पाठकों की सुविधा के लिये दे दिया गया है।

मेरा विश्वास है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन से रीतिकालीन रसचिंतना को गहराई के साथ प्रत्यक्ष अवलोकन की चाह रखनेवाले विद्वान्, छात्र, अनुसंधायक और सामान्य पाठक निश्चय ही लाभान्वित होंगे। मेरी धारणा है कि यदि इसी प्रकार अलंकार, ध्वनि आदि अन्य काव्य तत्त्वों के भी संकलन प्रकाशित किए जायँ तो हिंदी साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जायगी। सच पूछिए तो एतादृश ग्रंथों से ही हिंदी के निजी काव्यशास्त्र का निर्माण होगा।

आचार्यप्रवर प्रो० देवेंद्रनाथ शर्मा, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पटना विश्व विद्यालय का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ जिन्होने 'आमुख' के माध्यम से आशीर्वाद देकर इस ग्रंथ की गरिमा बढाई है।

यदि इस ग्रंथ के प्रकाशन से हिंदी काव्यशास्त्र के विधायकों और अधीतियों को थोड़ा भी परितोष हुआ तो मै अपने परिश्रम को सफल आँकूँगा।

हरिशयनी एकादशी, १९६८ ई० } —सच्चिदानंद चौधरी

विषयानुक्रम

प्रथम खंड

रीतिकालीन रसशास्त्र की भूमिका — १–५४

[१] रससिद्धांत का महत्त्व — १-२

[२] परंपरागत काव्यशास्त्र की रसधारा — २–११

[३] रीतिकालीन काव्यशास्त्र

पृष्ठभूमि — ११–१२

उद्भव — १२–१६

विकास — १६–२२

[४] रीतिकाल के तीन काव्य संप्रदाय — २२–२४

रससंप्रदाय — २४–२७

ध्वनिसंप्रदाय — २७–३०

अलंकारसंप्रदाय — ३०

[५] रीतिकालीन विवेचना की परिसीमाएँ — ३०–३३

[६] रीतिकालीन रसविवेचना के विशिष्ट अंश — ३३

(क) रसस्वरूप और अभिव्यक्ति — ३३–३८

(ख) विभाव: नायकनायिका भेद — ३८–३९

(ग) अनुभाव, सात्विकभाव और संचारीभाव — ३९–४१

(घ) स्थायी भाव — ४१–४२

(ङ) रसभेद — ४२–४४

(च) रसदोष — ४४–४८

[७] सर्वेक्षण — ४८–५४

द्वितीय खंड

रीतिकालीन रसशास्त्र — ५५–१५८

प्रथम अध्याय

रसस्वरूप और अभिव्यक्ति — ५५–७०

[केशव, चिंतामणि, तोष कुलपति, देव, कुमारमणिभट्ट, सोमनाथ, भिखारीदास, रसलीन, रूपसाहि, शिवनाथ, जनराज, उजियारेकवि, पद्माकर, बेनी प्रवीन, करनकवि, प्रतापसाहि,

चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, रसिकबिहारी, नंदराम और लछिराम]

द्वितीय अध्याय

विभाव [आलंबन और उद्दीपन] ७१-९०

[कृपाराम, नंददास, रहीम, केशव, चिंतामणि, तोप, मति राम कुलपति, देव, कुमारमणिभट्ट, सोमनाथ, भिखारीदास, रसलीन, रूपसाहि, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, वेनी प्रवीन, करन कवि, प्रतापसाहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वालकवि, रसिकबिहारी, नंदराम, और लछिराम]

तृतीय अध्याय

अनुभाव [सात्विक भाव सहित] ९१-१०४

[केशव, चिंतामणि, तोप, मतिराम, कुलपति, देव, कुमारमणि भट्ट, सोमनाथ, भिखारीदास, रसलीन, शिवनाथ, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, वेनीप्रवीन, करन कवि, प्रतापसाहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, रसिकबिहारी, नंदराम और लछिराम]

चतुर्थ अध्याय

संचारी भाव १०५-११४

[केशव, चिंतामणि, तोप, मतिराम, कुलपति, देव, कुमारमणि भट्ट, सोमनाथ, भिखारी दास, रसलीन, शिवनाथ, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, वेनी प्रवीन, करन कवि, प्रतापसाहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, रसिकबिहारी, नंदराम और लछिराम]

पंचम अध्याय

स्थायी भाव ११५-१२६

केशव, चिंतामणि, तोप, मतिराम, कुलपति, देव, कुमारमणि भट्ट, सोमनाथ, भिखारीदास, रसलीन, शिवनाथ, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, वेनी प्रवीन, करन कवि, प्रतापसाहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, रसिकबिहारी, नंदराम और लछिराम]

षष्ठ अध्याय

रसभेद १२७-१३४ क

[केशव, चिंतामणि, तोष, मतिराम, कुलपति, देव, कुमार मणि भट्ट, सोभनाथ, भिखारीदास, रसलीन, रूपसाहि, शिवनाथ, जनराज, उजियारे कवि, पद्माकर, वेनी प्रवीन, करन कवि, प्रतापसाहि, चंद्रशेखर वाजपेयी, ग्वाल कवि, नंदराम, रसिक विहारी, लछिराम]

सप्तम अध्याय

रस दोष १३५ क-१४२

[केशव, चिंतामणि, कुलपति, देव, कुमारमणि भट्ट, सोभनाथ, भिखारीदास, जनराज, प्रताप साहि]

परिशिष्ट—१ १४३-१५८

जगन्नाथ प्रसाद भानु और बिहारीलाल भट्ट

[रस का स्वरूप और अभिव्यक्ति, रस के उपकरण, रसभेद]

परिशिष्ट—२ १५९-१६४

[बिहारी लाल भट्ट : आध्यात्मिक नायिका भेद]

परिशिष्ट—३ १६५

[रीतिकालीन रस ग्रंथों का परिचय और विवरण]

सूचना—प्रस्तुत पुस्तक में १२९ से १३६ तक के पृष्ठांक भूल से दुबारा लग गए हैं।

———

रीतिकालीन रसशास्त्र की भूमिका

[प्रथम खंड]

रीतिकालीन रसशास्त्र

भूमिका

रससिद्धांत का महत्व

भारतीय काव्यशास्त्र के सुदीर्घ कालक्रम में अनेक काव्य सप्रदाय हो गए हैं—अलंकार सप्रदाय, रीति (गुण) सप्रदाय, वक्रोक्ति सप्रदाय, ध्वनि सप्रदाय, औचित्य संप्रदाय और रस साप्रदाय। इनमे सर्वाधिक स्थायी एवं महत्वपूर्ण रस सम्प्रदाय है। इन साप्रदायों की पारस्परिक तुलना से भी यही सिद्ध होता है। रस के महत्व का मुख्य कारण है उसका काव्योत्पत्ति का आदि स्रोत होना। काव्य के अन्य उपकरणों—रीति, गुण, अलकार आदि को यह श्रेय प्राप्त नहीं है। काव्य रचना की प्रक्रिया पर भी ध्यान देने से यह विषय नितात स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रत्येक मनुष्य पर उसके आभ्यंतर और बाह्य वातावरण का प्रभाव पडता है। मनुष्य इतना सवेदनशील प्राणी है कि ससार की छोटी से छोटी घटना या व्यापार को प्रतिक्रिया भी उस पर होती है। ये प्रतिक्रियाएँ ही मानवीय सवेदनाओं को भावरूप मे परिणत कर देती हैं। इन भावों का विस्तार इतना होता है कि मनुष्य उन्हें अपने हृदय की सीमित परिधि में बाँध कर नहीं रख सकता है। उन्हे अभिव्यक्त करने के लिये वह बाध्य हो जाता है। कलाप्रवण मनुप्य भावों की इस विस्तार दशा मे अपनी योग्यता के अनुसार शब्द, रेखा, लय, गति आदि के माध्यम से उन्हे अभिव्यक्त कर क्रमशः कविता, चित्र, सगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं का सृजन करता है। रवींद्र ठाकुर की यह उक्ति इस प्रसंग मे ध्यातव्य है—

मैन हैज़ ए फंड आव् इमोशनल एनर्जी ह्विच इज नौट ऐट आल अकुपाइड विद हिज़ सेल्फ-प्रिजर्वेशन। दिस सर्प्लस सीक्स इट्स आउटलेट इन द क्रिएशन आव् आर्ट, फौर मैं'स सिविलिजेशन इज़ बिल्ट अपौन दिस।

—ह्वाट इज आर्ट ? (निबंध)

जिन मनुष्यों को भावाभिव्यक्ति की ऐसी शक्ति या प्रतिभा उपलब्ध नहीं है, वे भी रो हँस कर, बातचीत कर या अन्य किसी विकृत ढंग से अपने हृद्गत भावों को व्यक्त करते पाए जाते हैं। फलतः यह सिद्ध होता है कि भावाभिव्यक्ति

ही काव्य या अन्य किसी कला के सृजन का मूल कारण है। यह भावाभिव्यक्ति ही वस्तुतः रस है। इसी प्रकार काव्य के पाठक भी भावों की विस्तारदशा में रस का आस्वाद करते हैं। हृदय की मुक्तावस्था में ही काव्य की सर्जना भी होती है और उसका आस्वाद भी। रामचद्र शुक्ल जी ने ठीक ही कहा है—

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है।

—कविता क्या है (निबंध)

कहने का तात्पर्य यह कि कवि और भावक दोनों के लिये रस अत्यत महत्व-पूर्ण है।

जहा तक काव्यशास्त्र में रस सिद्धात के महत्व का प्रश्न है, भरत से लेकर जगन्नाथ तक प्रायः प्रत्येक आचार्य काव्य के रस तत्व से परिचित हैं। विभिन्न सप्रदायों में विश्वास रखते हुए भी रस को महिमा सभी ने गाई है। अतएव काव्यशास्त्र में रसवाद का महत्व अक्षुण्ण एव निःसंदिग्ध है।

शास्त्रीय उलझनों से तटस्थ होकर सर्वसाधारण अशिक्षित मनुष्य काव्य से क्या समझता है, इस पर भी यदि विचार किया जाय तो रस की सार्वभौम सत्ता ही प्रमाणित होगी। अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित ग्रामीणजन भी नाटक, नौटंकी, रामलीला या सिनेमा देखते हैं। कभी कभी रामायण, महाभारत और पुराणों के प्रवचन तथा ग्राम्य गायकों के सगीत भी सुनते हैं। इन सब के देखने और सुनने से उन्हे भले ही थोडी बहुत शिक्षा भी मिलती हो पर सबसे बढकर जो उन्हें प्राप्त होता है वह है आनंद। यह आनद भी अनेक प्रकार का होता है। इसका स्वरूप चाहे हास्यात्मक हो, करुणात्मक हो, शृगारात्मक हो या विस्मयात्मक, परंतु वह है आनंद ही। वस्तुतः यह आनदोपलब्धि रसास्वाद से अभिन्न है। रस की आनदस्वरूपता किसी से छिपी नहीं है।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें या काव्यशास्त्रीय ढंग से विचार करें किंवा साधारण जनों के स्थूल दृष्टिकोण से सोचें, काव्य मे रस की उपादेयता माननी ही पडेगी। अतएव सर्वमान्य रसतत्व के आधार पर काव्यानुशीलन करने वाले 'रससंप्रदाय' की चिंतनधारा की व्यापकता एव महत्व में सदेह की थोड़ी भी गुजायश नही है।

२. परंपरागत काव्यशास्त्र की रसधारा

भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र के आधार पर ज्ञात होता है कि रसों का आदि स्रोत 'अथर्ववेद' है। रूपकों की उत्पत्तिचर्चा के क्रम मे भरत मुनि ने बताया है कि ब्रह्मा ने देवताओं के मनोरंजन के लिये 'नाट्यवेद' नामक पाँचवाँ वेद

निर्मित किया। यह पाँचवाँ वेद ऋक्, यजुः, साम और अथर्वण नामक चारों वेदों से लिए गए तत्वों का समिश्रण मात्र है। ऋग्वेद से कथोपकथन, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत, तथा अथर्ववेद से रस का साकलन कर नाट्यवेद का प्रणयन हुआ -

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥

—नाट्यशास्त्र, १।१७

'रसान्' के बहुवचन प्रयोग द्वारा रस की 'अनेकता का भी सूचन हो रहा है। स्पष्ट है कि अथर्ववेद मे भी अनेक रसों का अस्तित्व था। तथापि रसविवेचन का सर्वप्रथम श्रेय भरत को ही मिलना चाहिए। भरत के पूर्ववर्ती भी कुछेक रस-विवेचक भी हो गए हैं, पर उनके ग्र थ आज अनुपलब्ध हैं।

उपनिपदों मे भी रस का उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में रस को ब्रह्म का पर्याय माना गया है। उसी ब्रह्मस्वरूप रस का साक्षात्कार होने पर योगियों को आनंद की उपलब्धि होती है।[1] वस्तुतः रसास्वाद की अवस्था मे काव्य के पाठक या रूपकों के प्रेक्षक उसी प्रकार रसमग्न होते हैं जैसे निर्विकल्पक समाधि की स्थिति मे ब्रह्मसाक्षात्कार-परायण योगी जन। छादोग्य उपनिषद्, कठोपनिपद् और सर्वोपनिपद् मे भी रस शब्द का उल्लेख मिलता है। छादोग्य ब्रह्म के पर्यायवाची रस से ही वेदों की सृष्टि बताता है।[2] कठ और सर्व म रस-नास्वाद के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग हुआ है। फलतः औपनिषदिक चिंतन के अनुसार रस की 'ब्रह्मास्वादसहोदरता' भली भाँति प्रमाणित होती है।

उपनिषदों के अनंतर पौराणिक काल का आगमन होता है। अग्निपुराण में अन्य विषयों की चर्चा के साथ साहित्यशास्त्र का भी थोडा बहुत विवरण मिलता है। भगवान् व्यास ने अग्निपुराण में रस को काव्य का जीवन ही माना है। तथापि वाग्वैदग्ध्य की महत्ता को आप अस्वीकृत नहीं करते हैं। अग्निपुराणकार ने रस की महत्ता तो स्वीकार की है किंतु शृ गार को विशेष महत्व प्रदान किया। नीरस वाणी को तो आप काव्य मानने को भी प्रस्तुत नहीं हैं। विष्णुपुराण के किसी अश में भी काव्यशास्त्रीय बाते हैं किंतु वहा इसका उल्लेख नहीं है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश मे यथाप्रसग विष्णुपुराण से कुछ एक उद्धरण गृहीत किए हैं।

१. तैत्तिरीय उपनिषद्, ११।७।१।
२. छांदोग्योपनिषद्, ४।१७।

जहा तक रस के सैद्धातिक विवेचन का संबंध है, सबसे पहले नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि का नाम अति आदर के साथ लिया जायगा। भरत को रससंप्रदाय का प्रधान प्रवर्तक माना जाता है। यद्यपि इनके नाट्यशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय दृश्यकाव्य या रूपक है, परतु रूपकों की मुख्य संपत्ति इन्होंने रस ही मानी है। इनके अनुसार रसरहित नाटक निरर्थक हैं। रूपकों का प्रधान उद्देश्य प्रेक्षकों के हृदयनिष्ठ रत्यादि भावों को उद्रिक्त कर रसास्वाद कराना ही है।

नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत मुनि सैद्धातिक विवेचना की दृष्टि से आदि आचार्य कहे गए हैं। किंतु इनके पूर्व भी रस सिद्धात के प्रतिपादक अनेक आचार्य थे जिनका उल्लेख स्वय भरत ने नाट्यशास्त्र मे किया तथा अन्य लेखकों द्वारा भी दूसरे प्रामाणिक ग्रंथों मे किया गया है। भरत के 'अत्रानुवश्यौ श्लोकौ भवतः' सें स्पष्ट है कि भरत मुनि के पूर्व भी रस सिद्धात का स्थापन हो चुका था। परंतु खेद का विषय है कि उन आचार्यों तथा उनकी कृतियों के नाम अज्ञात हैं। राजशेखर ने काव्यमीमासा मे बताया है कि अलकारशास्त्र का प्रथम ज्ञान शिव से ब्रह्मा को प्राप्त हुआ और तदनतर दूसरों को। समस्त अलकारशास्त्र को अठारह अधिकरणों मे बाँटा गया और प्रत्येक अधिकरण के अध्यापन का भार पृथक् पृथक् कृतविद्य आचार्यों को सौंपा गया।[३] राजशेखर की तालिका के अनुसार भरत रूपकों के निरूपण कार्य मे लगे और रसनिरूपण का दायित्व नदिकेश्वर ने सँभाला। तथापि रूपक निरूपण के प्रसंग मे भरत ने भी वाचिक अभिनय में रस का विवेचन किया। फलतः रसों की दो परपराएँ हो गईं। प्रथम भरत की रसपरंपरा और दूसरी नंदिकेश्वर की। नदिकेश्वर की कोई भी कृति अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुई है। अतएव नंदिकेश्वरवाली रसपरंपरा विलुप्त हो गई और भरत की परंपरा आज तक उज्जीवित है।

शारदातनय विरचित 'भावप्रकाशन' नामक ग्रंथ मे वासुकि, नारद तथा व्यास की एक तीसरी रसपरंपरा का भी उल्लेख मिलता है। इस परंपरा के आदि प्रवर्तक आचार्य वासुकि हैं। ब्रह्मा द्वारा प्रवर्तित भरत की रसपरंपरा से इसकी इतनी ही भिन्न विशेषता है कि जहा भरत ने आठ रस माने वहा वासुकि ने नौ रस माने हैं। भरत ने शांत को नाट्य रस नहीं माना परतु वासुकि ने इसे भी रसों के अंतर्गत परिगणित किया है। संभवतः इस परंपरा का सबंध भक्त्यात्मक कीर्तन-पद्धति से रहा हो। इनके अतिरिक्त भी कुछ अज्ञात कृतियों में प्राचीन आचार्यों के

३. राजशेखर, काव्यमीमांसा, पृ० १।

नामों का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है। पता नहीं, उन्होंने रस सिद्धात पर अपने विचार अभिव्यक्त किए थे या नहीं। सातवीं सदी के आचार्य दडी के काव्यादर्श ग्रंथ की हृदयगमा और श्रुतानुपालिनी नामक टीकाओं मे कश्यप, वररुचि, नंदिस्वामी और ब्रह्मदत्त प्रभृति शब्दशास्त्रियों के नाम पाए जाते हैं। नदिस्वामी तो सभवतः उपर्युक्त नदिकेश्वर हो सकते हैं परंतु ये अन्य आलकारिक कौन थे तथा इनकी रचनाएं कौन सी थीं—ये सब अभी तक अज्ञात हैं। हो सकता है, इन्होंने भी रससिद्धात पर अपने विचार प्रकट किए हों। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे कृशाश्व और शिलालिन् नामक दो नटसूत्रों का नामोल्लेख पाया जाता है।[४] महर्षि पाणिनि का समय खीष्ट पूर्व पचम शतक माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि ईसा से पाच सौ वर्ष पूर्व भी नाटकों का अभिनय तथा नाट्यशास्त्र भारत में विद्यमान था। अतएव रससिद्धात के विवेचन का ईसा पूर्व मे होना निश्चित है।

अभी तक नंदिकेश्वर प्रभृति आचार्यों ने दृश्यकाव्य में ही रससिद्धात की योजना की थी। केवल रूपकों मे सभावित आठ या नव रसों की आलोचना प्रत्यालोचना होती रही। श्रव्यकाव्य का क्षेत्र रस-सिद्धात-विवेचना की दृष्टि से अछूता था। ऐसा लगता है कि आचार्यों ने श्रव्यकाव्य की शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से उपेक्षा की हो। परतु आचार्यों का ध्यान भले ही इस ओर आकृष्ट न हुआ हो, हमारे प्राचीन वाल्मीकि और कालिदास जैसे रससिद्ध कवियों की दृष्टि इस दिशा में निश्चित रूप से गई थी। वाल्मीकि ने 'शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा' कह कर करुण रस का ही सकेत किया है। रससपृक्त काव्य के अस्तित्व एव उसके व्यापक प्रभाव की सूचना इससे मिलती है। महाकवि कालिदास ने भी अपने रघुवश नामक महाकाव्य में वाल्मीकि के दृष्टिकोण का समर्थन किया है।[५] भरत के बाद भामह, दडी, उद्भट, वामन प्रभृति आचार्यों ने श्रव्यकाव्य की समीक्षा अपने अपने सिद्धात ग्रथों मे प्रस्तुत की। इस क्रम में उन्होंने काव्य में रसतत्व का उल्लेख भी किया है किंतु उनके हाथों रस को विशेष महत्व नहीं प्राप्त हुआ। उन्होंने रस को काव्य में एक गौण स्थान तो दिया परतु प्रधानता अलकारों की मानी। भामह ने रस को भी अलंकारों के अतर्गत माना और उनका नाम 'रसवत्' अलकार रखा।[६] इन्हीं आचार्यों के

४. अष्टाध्यायी, ४।३।११०–१११।

५. रघुवंश, १४।७०।

६. काव्यालंकार, ३।६।

काव्यसंप्रदाय को अलंकार संप्रदाय घोषित किया गया है। भावों से युक्त अलंकारों का नाम 'प्रेय' अलकार रखा गया। तथापि महाकाव्य मे रस की सत्ता इन्होंने भी आवश्यक मानी। महाकाव्य में रस की उपादेयता की ओर लक्ष्य कर भामह ने कहा—'सभी रसों से युक्त महाकाव्य एक विशेष काव्यकृति है।[७]

दडी ने भी अलंकारों को ही काव्य-शोभा-वर्द्धक धर्म माना है।[८] परतु इनका अलंकार शब्द अत्यंत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दडी के अलकार शब्द के अंतर्गत रस, रीति, अलकार आदि सारे शोभावर्द्धक काव्यतत्व समाविष्ट हैं। अतएव दडी के विवेचन में भी रसतत्व को प्राधान्य न प्राप्त हो सका।

उद्भट ने भी भामह और दडी के अलकारवाद का ही समर्थन किया। इनके अनुसार भी पूर्ववत् अलंकार काव्य का एक प्रधान तत्व और रस गौण धर्म स्वीकृत हुआ। भामह की भाँति इन्होंने भी रसवत् आदि अलकारों की कल्पना की। विशेषता इतनी भर थी कि जहाँ भामह ने रसयुक्त तीन ही अलकार माने थे—रसवत्, प्रेयस् और ऊर्जस्विन्, वहाँ इन्होंने रसालंकारों के चार भेद किए और समाहित नामक एक चतुर्थ रसालकार की भी उद्भावना की।

उपर्युक्त तीन आलकारिकों के बाद वामन की काव्यमीमासा का युग आया उक्त आलकारिकों से इनका इतना हो मतभेद है कि इन्होंने अलंकारों की अपेक्षा गुणों को काव्य में अधिक महत्व प्रदान किया। रीति को इन्होंने काव्य की आत्मा माना तथा रस को गुणों के अवांतर्गत ही रखा। रसयुक्त गुण को इन्होंने 'काति' के नाम से अभिहित किया।[९] कहने का तात्पर्य यह कि वामन के समय तक महत्व की दृष्टि से रस गौण ही रहा। अभी तक अलकारयुक्त या गुणयुक्त काव्य को ही सत्काव्य की सज्ञा मिली और रस को अलंकारों या गुणों में रहने वाला एक धर्ममात्र स्वीकृत किया गया।

इसके बाद 'काव्यालकार' के रचयिता रुद्रट का काल आता है। सर्वप्रथम इन्होंने ही रस को श्रव्यकाव्य में मान्यता प्रदान की। इन्होंने रस को रूपकों के सकीर्ण कटघरे से निकाल कर काव्य के उन्मुक्त प्रागण मे समाविष्ट होने का अवसर प्रदान किया। रुद्रट ने अलंकारों को शब्द और अर्थ को अलकृत करने वाला धर्म माना। अन्य अलंकारवादियों की तरह इन्हें काव्य का शाश्वत परमतत्व नहीं स्वीकार किया। इतना ही नहीं, इन्होंने खुले शब्दों मे उद्घोषणा की कि

७. वही, १।२१।

८. काव्यादर्श, २।१।

९. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, ३।२।१५।

काव्य में रस का होना परमावश्यक है।[10] रसहीन काव्य की काव्यता को स्वीकार करने के पक्ष में आप नहीं थे वरन् आपके अनुसार वैसे नीरस काव्य को उपादेय अर्थ से युक्त शास्त्रमात्र कहना चाहिए। रससिद्धात के विकासक्रम में इनकी विशेष देन यह भी हुई कि इन्होंने भरत निर्दिष्ट आठ रसों को बढा कर नौ कर दिया। साथ ही, इन्होंने यह भी स्वीकार किया कि सभी रसों के जितने भी व्यभिचारी तथा सात्विक भाव हैं, वे समुचित उद्भावक तत्वों को पाकर रसरूप मे परिणत हो सकते हैं। इस प्रकार रुद्रट के अनुसार रस के अनेक प्रभेद किए जा सकते हैं। जो हो, इतना निश्चित है कि काव्य के क्षेत्र में रस को सर्वप्रथम इन्होंने ही महत्व प्रदान किया। अब रस 'नाट्यरस' ही नहीं रहा प्रत्युत 'काव्य-रस' भी हो गया।

अब ध्वनिकार आनंदवर्द्धन का उदय हुआ। इन्होंने ध्वनि के अंतर्गत ही रस को भी निरूपत किया। यद्यपि रस को ध्वनि के अतर्गत डालकर इन्होंने उसे अतिव्यापक होने से वचित रखा तथापि ध्वनि में रसध्वनि को ही इन्होंने सर्वोत्कृष्ट ठहराया। आनंदवर्द्धन ध्वनि की काव्यात्मकता में विश्वास करने वाले ध्वनिसंप्रदाय के प्रधान आचार्य एवं प्रवर्तक हैं तथापि इन्होंने रस की काव्यात्मकता की ओर भी सकेत किया है।[11] फलतः ध्वनिसिद्धात के अंतर्गत ही रससिद्धात का भी निरूपण हो गया। साराश यह कि व्यग्यार्थमूलक ध्वनि-सिद्धात के भीतर रस को उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ स्थान अवश्य मिला, किंतु पूर्ववर्ती या परवर्ती काल के 'रसात्मकम्' की व्यापकता उसे प्राप्त न हुई। रुद्रट की तरह आनंदवर्द्धन ने भी रूपकों एवं काव्यों में समान रूप से रसों की उपयोगिता एवं आवश्यकता स्वीकार की।

ध्वनि सप्रदाय के प्रवर्तित हो जाने के अनतर धनंजय, धनिक, प्रतिहारेंदुराज, भट्टनायक आदि विद्वानों ने ध्वनिसिद्धात का बड़ी दृढता के साथ खंडन किया। ये भामह और उद्भट आदि अलकारवादियों के विचारों के समर्थक थे। अतएव इन्होंने ध्वनि को भी अलकारों के भीतर ही गतार्थ किया। इनका कहना था कि ध्वनि पर्यायोक्ति, श्लेष आदि अलंकारों से पृथक् कोई अभिनव तत्व नहीं है। तथापि भामह, उद्भट आदि अलंकारवादियों की अपेक्षा उपर्युक्त ध्वनि विरोधी आचार्यों की उदारदृष्टिता हम इस अंश मे मानते हैं कि इन्होंने रस को अलंकारों में सनिविष्ट नहीं किया प्रत्युत रस को अलकारों से पृथक् काव्य के आत्मतत्व के

१०. तस्मात्तत्कर्त्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्। —काव्यालंकार, १२।२।
११. ध्वन्यालोक, १।५।

रूप में ही निरूपित किया। कहने का आशय यह कि इन लोगों ने आनंदवर्द्धन के ध्वनि सिद्धांत का विरोध तो किया पर काव्य में रसतत्व की चमत्कारिता और उपादेयता विधिवत् स्वीकार की। इन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा तो नहीं माना पर रसकी काव्यात्मकता का समर्थन किया। रसबोध के लिये ध्वनिवादियों की तरह व्यंजनाव्यापार की आवश्यकता भी स्वीकृत न की। इसके बदले तात्पर्यशक्ति के द्वारा रसप्रतीति की घोषणा की। धनंजय और धनिक प्रणीत 'दशरूपक' तथा 'दशरूपकावलोक' क्रमशः इन्हीं विचारों से भरे पड़े हैं। भट्टनायक ने रसप्रतीति के लिये व्यंजना की जगह भोजकत्व व्यापार की उद्भावना की।

इसी खंडन मंडन की दौड़ में उपर्युक्त ध्वनि विरोधी आचार्यों के समर्थ तथा युक्तियुक्त खडन वाले अभिनवगुप्ताचार्य का समय आया। इन्होंने पुनः ध्वनि-सिद्धात की स्थापना की और आनदवर्द्धन की तरह उसी के भीतर रस सिद्धात का भी निरूपण किया। इन्होंने रस को असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के अंतर्गत स्वीकृत किया तथा साथ ही लक्षणामूला या संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि की भी काव्यात्मकता मान ली। अभिनवगुप्त ने रसध्वनिमात्र के समर्थक और वस्तुध्वनि के विरोधी भट्टनायक का खुले शब्दों में उपहास किया है।[१२] निष्कर्ष यह कि फिर से ध्वनिसिद्धांत के अंतर्गत रससिद्धात का अनुमोदन हुआ। अभिनव की स्थापना के बाद एक बार पुनः ध्वनि विरोध का आदोलन वक्रोक्तिजीवितकार कुतक तथा व्यक्तिविवेककार नैयायिक महिमभट्ट के नेतृत्व में चल पड़ा। एक ने रस के साथ ध्वनि को वक्रोक्ति में गतार्थ किया और दूसरे ने अनुमिति में।[१३]

ध्वनिसिद्धात के खंडन मंडन के लंबे अरसे के बाद सरस्वतीकंठाभरण और शृंगारप्रकाश जैसे अमूल्य काव्यशास्त्र सबधी ग्रंथों का प्रणयन हुआ। इन दोनों ग्रंथों के प्रणेता भोजराज थे। इन्होंने ध्वनि विरोधी तथा ध्वनि समर्थक पूर्ववर्ती आचार्यों की भाति ध्वनि, वक्रोक्ति आदि सिद्धातों के समर्थन एवं विरोध में अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं किया। इस विवाद से तटस्थ रहकर इन्होंने वक्रोक्ति, रसोक्ति और स्वभावोक्ति नामक काव्य-त्रितय की कल्पना की। इन तीनों में भी रसोक्ति को आपने सर्वप्रधान माना।[१४] फलतः इनकी दृष्टि में रस को काव्य में अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ। इन्होंने भी काव्य को रसवत् कहा है पर भामह और दंडी के रसवत् अलंकार वाले अर्थ में नहीं प्रत्युत इनके अनुसार इसका अर्थ है रसयुक्त होना।[१५]

१२. ध्वन्यालोक लोचन, १।४ की व्याख्या।
१३. अलंकारसर्वस्वविमर्शिनी, पृ० ८ और व्यक्तिविवेक, १।१।
१४. सरस्वतीकंठाभरण, ५।८।
१५. शृंगारप्रकाश, २, पृ० ३७०।

भोजराज ने रस का मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया। इन्होंने अहंकार, रस और शृंगार को पर्यायवाची माना--

रसोऽभिमानोऽहंकारः शृंगार इति गीयते।
योऽर्थः तस्यान्वयात् काव्यं कमनीयत्वमश्नुते ॥

—सरस्वतीकठाभरण, । ५।१

इनके अनुसार रसोत्पत्ति की जड है अहकार और इसकी तीन अवस्थाए हैं। तृतीय अवस्था में यह अहंकार ही रसरूप में परिणत हो जाता है। रसों में भी शृगार मौलिक रस है तथा उसी से अन्य रस उत्पन्न होते हैं। इस दार्शनिक रहस्य का सूत्र भरत के नाट्यशास्त्र में भी मिलता है।[१६]

भोजराज के अनंतर मम्मट के रससिद्धात निरूपण का काल आता है। इन्होंने भी ध्वनि सप्रदाय के प्रवर्तक आनंदवर्द्धन का ही अनुसरण किया है। जहा तक रस-सिद्धात-निरूपण का प्रसंग है, इन्होंने कोई मौलिकता नहीं दिखाई। दोष रहित, गुण सहित, अलंकार सहित या रहित शब्दार्थ को इन्होंने काव्य माना। 'अर्थ' शब्द वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य (ध्वनि) इन तीनों का बोधक है। यद्यपि इन्होंने काव्य के उत्तम, मध्यम और अधम नाम से तीन भेद किए है परतु इन तीनों में ध्वन्यर्थयुक्त काव्य को ही इन्होंने अधिक चमत्कारी होने के कारण उत्तमता प्रदान की। गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य का अस्तित्व इन्होंने भी ध्वनिकार की तरह अस्वीकृत न किया। ध्वनि के असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य नामक भेद के भीतर ही रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि का अतर्भाव किया। फलतः इनकी दृष्टि मे भी रस ध्वनि से पृथक् कोई वस्तु नहीं है और इसी से युक्त काव्य उत्तम भी है। परंतु एक मात्र रसध्वनि का अस्तित्व ही उत्तमता की कसौटी नहीं माना गया प्रत्युत वस्तुध्वनि और अलकारध्वनि से युक्त काव्य को भी उत्तम माना गया। पुनः काव्यप्रकाश के आठवे उल्लास में गुणों और अलंकारों के पार्थक्य एवं महत्व विमर्श के प्रसग में इन्होंने रस को काव्य मे अंगी भी कहा।[१७] इस प्रकार एक ओर व्यग्यार्थयुक्त (रस जिसका एक प्रभेद मात्र है) काव्य को उत्तम मानना तथा दूसरी ओर रसमात्र को काव्य का अगी या आत्मा मानना विरोधात्मक सा तो लगता है किंतु इतना निश्चित है कि इनकी दृष्टि मे रस काव्य का अति महत्व-पूर्ण, उपादेय एवं प्राणभूत तत्व है।

काव्यप्रकाश में ध्वनि तथा रस का विश्लेषण विवेचन समीचीन रूप से हो

१६. नाट्यशास्त्र, २२।८९।
१७. काव्यप्रकाश, ८।६६।

जाने के वाद दो ही प्रसिद्ध कृतियां साहित्यशास्त्र में देखी जाती हैं। उनमें एक है विश्वनाथ की साहित्यदर्पण और दूसरी है पंडितराज जगन्नाथ की रसगंगाधर। विश्वनाथ ने काव्य में रस को सर्वाधिक मान्यता प्रदान की। रसात्मक वाक्य से भिन्न स्थल में इन्होंने काव्यत्व ही नहीं माना। रस को ध्वनि आपने भी माना है परतु रसरहित वस्तुध्वनि या अलकारध्वनि मे भी काव्यत्व आपको मान्य नहीं है।

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की व्याख्या मे आपने काव्य में रस की अनिवार्य आवश्यकता प्रमाणित की है। इस सदर्भ मे मम्मट की तरह आपका विचार उलझा हुआ नहीं है। ये स्पष्टतः एकमात्र रस की काव्यात्मकता मे विश्वास रखते हैं। एक और विशेष उल्लेखनीय वात यह है कि विश्वनाथ ने चमत्कार या चित्तविद्रुति को रस का सार माना है और इसी के आधार पर अद्भुत रस को प्रमुख तथा अन्य रसों को अद्भुत के अग स्वीकृत किया है। यह इनका वैयक्तिक विचार ही नहीं था प्रत्युत कौलिक था। इस प्रसग में इन्होंने अपने वृद्ध प्रपितामह श्रीमन्नारायण के विचारों को उद्धृत किया है जिसमे स्पष्ट रूप से अद्भुत को मुख्य और अन्य रसों को गौण माना गया है।[१८] भवभूति ने इसी प्रकार करुण को मुख्य रस तथा शेप रसों को गौण मानते हुए कहा था—

> एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्,
> भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान्,
> आवर्त्तबुद्वुदतरंगमयान् विकारान्,
> अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥[१९]

—जैसे जल परिस्थितिवश भ्रमि, बुलबुले, तरंग आदि विभिन्न रूपों को प्राप्त करता है परंतु वे उस जल से अपृथक् उसके विकार मात्र हैं, उसी तरह काव्य या नाटक मे एक मात्र प्रमुख रस करुण ही है और वह निमित्तभेद से शृंगार, वीर, हास्य आदि अनेक रूपों को प्राप्त कर लेता है।

विश्वनाथ के इस उग्र रसवाद का विरोध अठारहवीं शताब्दी में पडितराज जगन्नाथ ने किया और उन्होंने फिर से ध्वनिकार की ही स्थापना को सर्वमान्य घोपित किया। विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' को सकीर्ण कहकर 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' के द्वारा काव्य को परिभापित किया और इस प्रकार भाव के अतिरिक्त कल्पना और बुद्धितत्व को काव्य मे उचित स्थान दिया। इन्होंने काव्य के चार भेद किए—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम।

१८. साहित्यदर्पण, ३।२ (वृत्ति)।
१९. उत्तररामचरित, ३।४७।

मम्मट प्रतिपादित गुणीभूत व्यंग्य नामक मध्यम काव्य को भी इन्होंने उत्तम ही माना। इस प्रकार ध्वनिवादी होते हुए भी इन्होंने रस के महत्व को मुक्तकठ से स्वीकार किया और उसी का विस्तृत विवेचन अपने रसगंगाधर नामक ग्रंथ मे प्रस्तुत किया। जगन्नाथ के अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि और ध्वनि की आत्मा रस है। अतएव रस की सर्वोत्कृष्टता स्वतः सिद्ध है। जगन्नाथ के अनंतर भानुदत्त या भानुमिश्र ने दो रसग्रंथ लिखे—रसतरगिणी और रसमजरी। इनमे न तो विवेचन की गभीरता है और न सैद्धातिक नवीनता। विषय का सरलता के साथ प्रतिपादन ही ग्रंथकार का मुख्य उद्देश्य है। तथापि शृंगार की रसराजता पर बल इन्होंने अवश्य दिया है।

इस प्रकार ईसापूर्व प्रथम शतक के भरत मुनि से लेकर अठारहवीं सदी के पडितराज जगन्नाथ के काल तक रससिद्धात का विकास कभी स्वतत्र रूप में और कभी ध्वनिसिद्धात के अतर्गत होता रहा। फलतः रसात्मक काव्य की सर्वोत्कृष्टता ध्वनिवादियों और रसवादियों दोनों को मान्य हुई। जगन्नाथ के बाद रससिद्धात पर सस्कृत में कोई भी उल्लेखनीय विवेचन ग्रंथ नहीं लिखा गया और इस परपरा का स्त्रोत संस्कृत के काव्यशास्त्र मे अवरुद्ध सा हो गया।

३. रीतिकालीन काव्यशास्त्र

पृष्ठभूमि—हिंदी काव्य की धारा १०५० विक्रम सवत् से ही विभिन्न प्रवृत्तियों का संभार लिए प्रवाहित होती चली आ रही थी। पर अब तक इसे वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी जो सस्कृत काव्य को प्राप्त थी। संस्कृत साहित्य क्रमशः ह्रासोन्मुख था और जगन्नाथ के बाद कोई वैसी प्रतिभा दृष्टिगोचर नहीं हुई। जो दो-चार कवि और आचार्य सस्कृत में पैदा हुए भी, वे महत्वपूर्ण प्रमाणित नहीं हुए। इधर अकबर के शासनकाल मे हिंदी साहित्य का पूर्ण विकास हुआ। एक ओर अवधी (हिंदी की एक बोली) के माध्यम से रामचरित मानस जैसे अमूल्य ग्रंथरत्न के प्रणेता तुलसीदास का आविर्भाव हुआ तो दूसरी ओर 'सूरसागर' के सरस प्रवाह में बहा ले जाने वाले सूरदास ने ब्रजभाषा के माध्यम से हिंदी साहित्य के भंडार की वृद्धि की। परिणामतः सामान्य जनता के अतिरिक्त शिष्ट एवं शिक्षित जन भी भाषा काव्य को समादर की दृष्टि से देखने लगे। भारतीय शासन के विकेंद्रीकरण के अनतर तो पुनः रईसों, अमीरों और छोटे छोटे राजाओं के दरबारों की ही शोभा कविगण बढ़ाने लगे। ये कलाप्रेमी तो थे पर संस्कृत साहित्य और शास्त्र के ज्ञान से विहीन थे। अतएव इन कलाप्रेमियों के मनोरजन के लिये विशेषतः ओर हिंदी काव्यप्रेमी जनों के लिये सामान्यतः काव्यशास्त्रों की रचना करना हिंदी के कवियों के लिये आवश्यक सा हो गया। ऐसी ही परिस्थिति में हिंदी काव्यशास्त्र के प्रणयन का आरंभ हुआ। एक और

भी कारण हुआ। वह यह कि मध्यकाल में अनेक परिवार काव्यजीवी थे। उनमें कवि बनने की प्रतिभा चाहे न भी रही हो, पर जीविकोपार्जन के लिये काव्य-रचना करना उनका धधा था। ऐसे कवियशःप्रार्थी जनों के लिये भी कतिपय आचार्य भाषा के माध्यम से सस्कृत के काव्यशास्त्रीय ज्ञान को प्रस्तुत कर देते थे जिससे छद, अलंकार, रस, नायिकाभेद आदि काव्यांगों की जानकारी के आधार पर वे काव्यप्रणयन कर सकें।[२०] इन सारे कारणों के परिणामस्वरूप जब दो चार काव्यशास्त्रीय ग्र थ हिंदी मे प्रस्तुत हो गए, फिर तो उनका अंबार लग गया। 'गतानुगतिको लोकः–इस न्याय के अनुसार जितने भी कवि ख्यातिप्राप्त होना चाहते थे, उनके लिये यह आवश्यक हो गया कि वे काव्यरचना के साथ ही लक्षणग्र थ भी लिखें। अतएव कुछ ने तो स्वतत्र काव्यग्रंथ रचे और फिर स्वतत्ररूप से लक्षणग्र थ भी लिखे जिनमें उदाहरण भी उनके अपने ही हैं। पर कुछ ऐसे भी कवि या आचार्य हुए जिन्होंने लक्षणग्रंथ प्रस्तुत करने के क्रम में ही अपनी कवित्वशक्ति का परिचय दिया। लगभग दो सौ वर्षों तक (सवत् १७००–१६०० विक्रम सवत्) हिंदी में इसी तरह के साहित्य की सर्जना हुई। अतएव इस युग को इतिहासकारों ने प्रवृत्ति के आधार पर 'रीतिकाल' कहा है। काव्यशास्त्र रचने की परिपाटी जो हिंदी के रीतिकाल मे चली, वह रूप बदल कर आज तक प्रचलित है। जो कार्य पहले पद्य के माध्यम से होता था, वही आज गद्य के माध्यम से हो रहा है। आज भी आलोचना ग्रंथों के रूप में, प्राचीन लक्षण ग्रंथों की टीकाओं के रूप में, शोधप्रबंधों के रूप में तथा फुटकर लेखों के रूप में हिंदी की काव्यशास्त्रीय परपरा जीवित है। यह बात अलग है कि पाडित्य की प्रखरता, शिक्षा के विस्तार, विदेशी साहित्यों का सपर्क और गद्यात्मक माध्यम के कारण अर्वाचीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों मे विवेचना की मौलिकता रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्र थों की अपेक्षा अधिक है। जो हो, उक्त पृष्ठभूमि के साथ ही हिंदी काव्यशास्त्र की अवतारणा हुई।

उद्भव—अब प्रश्न यह है कि हिंदी काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य किसे माना जाय? इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ इतिहासकार रामचंद्र शुक्ल ने कृपाराम की हिततरंगिणी को हिंदी का आदि काव्यशास्त्रीय ग्र थ स्वीकार किया है। कृपाराम का समय शुक्ल जी के अनुसार सवत् १५६८ है। कृपाराम, मोहनलाल मिश्र (शृंगारसागर के प्रणेता) और करनेस कवि (कर्णाभरण, श्रुतिभूषण नामक अलकार ग्र थों के लेखक) के द्वारा

२०. हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३८।

रसनिरूपण किए जाने के पश्चात् अनेकाग-निरूपक केशव के उदय काल को शुक्ल जी ने स्वीकृत किया है। इसके विपरीत 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार हिंदी काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य पुष्य नामक कवि है जिसने सातवीं शताब्दी मे अपभ्र श में एक अलकारग्र थ लिखा था। उक्त ग्र थ की अनुपलब्धि के कारण विद्वानों को यह तथ्य मान्य नहीं है, पर शात चित्त से विचार करने पर यह बात अविश्वसनीय भी नहीं प्रतीत होती है। यह सच है कि हिंदी साहित्य अनेक दिशाओं मे अपभ्रंश साहित्य का ऋणी रहा है—वर्ण्य विषय, शैली, प्रवृत्ति, छद आदि की परपरा प्राकृत और अपभ्र श साहित्य से ही हिंदी में आई है। कवीर आदि निगु ण कवियों के काव्यविषय को अपभ्र श के सिद्धसाहित्य ने प्रभावित किया है। जायसी तथा अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की कथावस्तु की प्रेमवर्णना में मूलाधार जैनाचार्यों द्वारा लिखी अपभ्रश कथाओं में पाया जाता है। जायसी और तुलसी आदि की दोहे-चौपाई शैली भी अपभ्र श काव्य ग्र थों से ही हिंदी मे प्रवर्तित हुई। अतएव हिंदी की साहित्यिक प्रवृत्तियों की परपरा का अनुसधान करते हुए हम भले ही अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य में पहुँच जाय, किंतु काव्यशास्त्र की वैसी कोई स्पष्ट परपरा हमे प्राकृत और अप-भ्र श मे उपलब्ध नहीं होती है। हिंदी के रीतिग्र थों का प्रत्यक्ष सबध सस्कृत काव्यशास्त्र से ही है। तथापि काव्यशास्त्र की एक क्षीण धारा जो अपभ्र श से आई, उसका आशिक प्रभाव भी हिंदी काव्यशास्त्र पर माना जा सकता है। विशेषतः लक्षण ओर उदाहरण साथ-साथ रचने की परपरा जो हिंदी के रीति-काल मे आई, वह अपभ्र श का ही प्रभाव है। इस प्रसग मे अपभ्रंश में रचे कतिपय काव्यशास्त्रीय ग्रथों का नाम लिया जा सकता है—यथा, सिद्ध शाति या रत्नाकर शाति (सन् १००० ई०) का लिखा छदोरत्नाकर, आचार्य हेमचद्र सूरि प्रणीत (सन् १०८८–१११६ ई०) प्राकृत व्याकरण, छंदोशासन और देशी नाममाला कोश। जैनाचार्य नयनंद (११ वी शताब्दी विक्रमीय) द्वारा लिखा हुआ 'सुदर्शनचरित्र' नामक काव्यशास्त्रीय ग्र थ भी उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में धार्मिक विषयों के उल्लेख के अलावा ऋतु, नखशिख, शृंगार और नायिका-भेद आदि भी वर्णित पाए जाते हैं। उक्त अपभ्रंश ग्र थों को हिंदी के काव्य-शास्त्रीय ग्र थ मान लेने पर हिंदी काव्यशास्त्र का उद्भव भी वही से मानना होगा। नहीं तो कम से कम इन ग्र थों का प्रभाव या प्रेरणा तो हिंदी की व्रजभाषा में लिखे काव्यशास्त्रीय ग्र थो पर स्वीकार करना ही पडेगा।

अपभ्र श को यदि हिंदी साहित्य का अग न मानें तो हिंदी काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य के रूप में हिततरगिणीकार कृपाराम को ही स्वीकार करना होगा। हिततरगिणी की रचना विक्रम सवत् १५९८ की माघ शुक्ल तृतीया को

हुई थी। यों स्वय कृपाराम ने अपने ग्रंथ मे लिखा है कि मैंने तो दोहों में शृंगार रस का वर्णन किया है पर मेरे कई पूर्ववर्ती आचार्यों और कवियों ने वडे वड़े छंदों (कवित्त-सवैया आदि) में रसरीति का निरूपण किया है। इससे ज्ञात होता है कि कृपाराम के पूर्व भी कतिपय काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन हो चुका था, पर ग्र थों की अनुपलब्धि के कारण हिततरगिणी को ही हिंदी का आदि काव्यशास्त्रीय ग्रंथ स्वीकार करना पडेगा। इस ग्रंथ का आधार भानुकृत रसतरगिणी है क्योंकि अवस्थाओं के अनुसार नायिकाओं के दस भेद हित-तरंगिणी में प्रतिपादित किए गए है। ऐसे भेद रसतरंगिणी में ही पाए जाते हैं। यद्यपि कृपाराम ने अपने ग्रंथ में भरत के नाट्यशास्त्र को आधार घोषित किया—'कृपाराम यों कहत हैं, भरत ग्रंथ अनुमानि', पर नाट्यशास्त्र में उक्त दस भेद उपलब्ध नहीं हैं वल्कि इनके स्थान पर अवस्थाओं के अनुसार नायिकाएँ आठ प्रकार की बताई गई हैं। डा० रामशकर शुक्ल ने अपने 'एवोल्यूशन आव् हिंदी पोएटिक्स' में करनेस वदीजन की हिततरगिणी का उल्लेख किया है और उसका समय १२०० ई० के लगभग बताया है। पर यह ग्रंथ आज तक किसी के देखने मे नहीं आया है। संभवतः कृपाराम की हिततरगिणी को ही इन्होंने करनेसप्रणीत मान लिया है।

हिततरगिणी के पश्चात् 'साहित्य लहरी' को कतिपय विद्वानों ने हिंदी काव्यशास्त्र का दूसरा ग्रंथ स्वीकार किया है। साहित्य लहरी के प्रणेता और उसके रचनाकाल के सवध में मत वैविध्य पाया जाता है। शुक्ल जी ने इसे सूरदास की रचना माना है तथा इसका रचनाकाल सवत् १६०७ माना है। इस ग्रंथ के 'मुनि पुनि रसन के रस लेष' वाले पद का 'रसन' शब्द विवाद का विपय वना हुआ है। इसका अर्थ शून्य, एक और दो किया जाता है। फलतः भिन्न भिन्न व्याख्याकारों के अनुसार साहित्य लहरी का रचनाकाल क्रमशः सवत् १६०६, १६१७ और १६२७ प्रमाणित होता है। इसकी अतिशय शृंगारिता को देखकर कुछ विद्वानों को इसे सूरदास की रचना मानने में सदेह होता है। पर उन्हें यह जानना चाहिए कि मीरा, नद, तुलसी आदि अनेक भक्त कवियों के काव्य में अतिशय शृंगारिकता भक्ति के आवरण में व्यंजित हुई है। स्वय सूरदास ने सूरसागर मे ऐसे अनेक पद लिखे हैं। यह परपरा भारतीय साहित्य मे अत्यत प्राचीन काल से चली आ रही है। भक्ति के नाम पर शृंगार की धारा गीतगोविंद-कार जयदेव और विद्यापति के युग से ही चली आ रही है। फिर भी यदि हम साहित्य लहरी को सूरदास की कृति न भी मानें तथापि इसे हिंदी का अपर रीतिग्रंथ मानने में तो किसी तरह की आपत्ति हो ही नहीं सकती।

सूरदास की साहित्य लहरी के पश्चात् अष्टछाप के दूसरे उल्लेखनीय कवि

नंददास ने भी रूपमंजरी, रसमंजरी और विरहमंजरी नामक काव्यशास्त्रीय रचनाएं प्रस्तुत कीं। रसमजरी मे इन्होंने नायिकाभेदों और उनके उदाहरणों को एक साथ मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि नायिकाओं का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट हो गया है। विरहमजरी में वियोगशृंगार का निरूपण और उसके भेदों का उल्लेख है। इसमें शृंगार रस के भेद—सभोग और विप्रलभ किए गए हैं। पुनः विप्रलभ शृंगार को प्रत्यक्ष, पलकातर, वनातर और देशांतर नामक चार प्रभेदों में बाट दिया गया है। रूपमजरी तो प्रेमाख्यानक काव्य है पर इसके प्रेमवर्णन की शैली में रीत्यात्मकता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। यों नंददास एक भक्त थे, आचार्य नहीं पर उनकी उपर्युक्त रचनाओं में रीत्यात्मक प्रवृत्ति एवं आंशिक रीतिनिरूपण नितात स्पष्ट हैं। नंददास का रचनाकाल सवत् १६२० के लगभग मानना चाहिए।

नददास के अनंतर रीति ग्रंथ प्रस्तुत करने वाले आचार्यों में 'रहीम' का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अवधी में सर्वप्रथम 'वरवानायिका' नामक रीतिग्रंथ रचा। इसमें दोहा छंद मे नायिकाओं का निरूपण किया गया है। इस ग्रथ का रचनाकाल अनुमानतः १६४० विक्रम संवत् है। इसी समय के आसपास रचे गए मोहनलाल मिश्र के शृंगारसागर और करनेस कवि द्वारा लिखित कर्णाभरण, श्रुतिभूषण और भूपभूषण नामक तीन अलंकारग्रंथों के संकेत इतिहास मे मिलते हैं। ये सभी ग्रंथ व्रजभाषा में ही रचे गए थे। मिश्रबधुओं के अनुसार करनेस कवि का सपर्क अकबरी दरबार के साथ था। अकबरी दरबार के अन्य हिंदी कवियों में गंग, मनोहर और गगाप्रसाद आदि भी ऐसे कवि थे जिनकी रचनाओं मे रीत्यात्मकता पाई जाती है। इसी समय के आसपास मुनिलाल और बलभद्र नामक दो अन्य रीतिकवि भी हुए। मुनिलाल ने रामप्रकाश नामक ग्रथ रचा था और बलभद्र ने नखशिख और दूषणविचार नामक दो ग्रंथ रचे। ग्रंथों की अनुपलब्धि के कारण इनके प्रतिपाद्य विषयों के सबध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना नितात कठिन है।

उक्त सभी आचार्यों को (कृपाराम से लेकर मुनिलाल तक, समय—१५८६ सवत् से १६४२-४५ सवत् पर्यंत) हिंदी काव्यशास्त्र का आरभक ही मानना चाहिए। काव्यानुशीलन का समर्थ एव प्रौढ अभिनिवेश इनमें से किसी भी आचार्य मे नहीं पाया जाता है। इनका श्रेय मात्र इतना है कि युग की माँग के अनुसार इन्होंने व्रजभाषा हिंदी में काव्यशास्त्रीय विषयों का निरूपण या प्रतिपादन (चाहे जैसा भी हुआ हो) कर दुर्बोध शास्त्रीय ज्ञान को सर्वसाधारण जनों के लिये सुलभ बना दिया।

हिंदी काव्यशास्त्र की इसी पूर्वपीठिका पर केशवदास का जन्म सवत् १६१८

मे हुआ। इन्होंने तीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचे—१-रसिकप्रिया, २-कविप्रिया, ३-छंदमाला। रसिकप्रिया की रचना आपने रसिकों के लिये की थी। इसमे रसरीति का निरूपण किया गया है। आचार्य केशव इसमे शृंगार की रसराजता सिद्ध करना चाहते हैं। अतएव अन्य रसों की चर्चा को चलता कर देते हैं और मात्र शृंगार का सांगोपांग प्रतिपादन करने लग जाते हैं। 'कविप्रिया' अधिक विस्तृत आधारभूमि पर खडी की गई है। इस ग्रंथ के आरंभ मे स्वयं केशव ने स्वीकार किया है कि काव्यशिक्षार्थियों के लिये यह ग्रंथ रचा गया है। एक साथ ही इस ग्रथ मे इन्होंने कवित्तदूषण (काव्यदोष), कविव्यवस्था (कवियों के भेद), कविप्रसिद्धि, कविरीति, अलकार, काव्यभेद आदि सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों एवं विषयों का प्रतिपादन किया है। 'छदमाला' मे भाषा कवियों को शिक्षा देने के लिये एकाक्षर से लेकर २६ अक्षरो वाले ७६ वर्णिक छंदों के लक्षण एवं उदाहरण रचे गए हैं। केशव के पास संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रगाढ ज्ञान था और थी काव्य रचने की अद्भुत प्रतिभा। अतएव कवित्व और आचार्यत्व के मणिकाचन योग से इन्होंने हिंदी मे काव्यशास्त्रीय ग्रथों के प्रणयन का आरभ किया। पर यदि केशव ने अपने आचार्यत्व और कवित्व के क्षेत्रों को पृथक् पृथक् रखा होता तो हिंदी काव्यशास्त्र की रूपरेखा आज कुछ और होती। आचार्यत्व और कवित्व के समन्वयन से लक्षणोदाहरणात्मक जो ग्रंथ इन्होंने प्रस्तुत किए, उन्हीं की नकल समस्त रीतिकाल मे होती रही। नतीजा यह हुआ कि ये रीतिकालीन आचार्य कवि सच्चे अर्थ मे न आचार्य ही वन पाए और न कवि ही। केशव प्रवर्तित रीतिधारा से पृथक् होकर दो चार कवियों ने केवल कविताएँ रचीं और उन्हें कविकर्म मे सफलता एवं श्रेय भी मिले। विहारी, घनानद, वोधा, आलम, ठाकुर आदि कुछ एक कवि इसी प्रवृत्ति की उपज हैं।

विकास—कृपाराम से लेकर रामप्रकाश के रचयिता मुनिलाल तक हिंदी काव्यशास्त्र का वीजवपन ही हुआ। केशव के ग्रथों मे आकर वह भलीभाँति अंकुरित हुआ। १६५८ वि० सं० (केशव का समय) के अनंतर लगभग १७०० वि० सवत् में जव चिंतामणि त्रिपाठी ने काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश, पिंगल, रसमंजरी आदि ग्रथों का प्रणयन किया तो हिंदी काव्यशास्त्र पूर्ण विकास की अवस्था को प्राप्त हो गया। फिर यह क्रम तो लगभग दो सौ वर्षों तक चलता रहा। केशव और चिंतामणि के वीच का व्यवधान हाल तक विद्वानों को खलता रहा है। शुक्लजी प्रभृति इतिहासकारों ने काव्यशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इस काल खंड को सर्वथा अंधकाराच्छन्न ही माना है। वस्तुस्थिति आज भी वैसी ही है। पर कतिपय नगण्य रीतिग्रंथों का अव पता चला है, जो इसी कालखंड मे रचे गए थे। इनमे से कुछ एक तो मात्र रीतिकालीन प्रवृत्तियों से

युक्त काव्यकृतिया मात्र हैं और अन्य में आशिक रीतिनिरूपण भी है। संवत् १६५० के पश्चात् मोहनदास ने बारहमासा और हरिराम एव बालकृष्ण ने क्रमशः छंदरत्नावली और रसचंद्रिका जैसी पिंगल विषयक रचनाएं प्रस्तुत कीं। सवत् १६६० में मुबारक ने और सवत् १६७६ में लीलाधर ने नखशिख विषयक पुस्तकें लिखीं जिनमें मुबारक प्रणीत अलकशतक और तिलशतक प्रसिद्ध रचनाएं हैं। संवत् १६८८ में सुंदर कवि ने सुंदरशृंगार का प्रणयन किया। इस ग्रंथ का उल्लेख चिंतामणि ने अपनी 'शृंगारमंजरी' नामक पुस्तक मे किया है। इस प्रकार केशव और चिंतामणि के बीच की कड़ी भी जुटी हुई है। इन दोनों आचार्यों के बीच के लगभग ५० वर्षों के कालखंड को काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से सर्वथा शून्य नहीं कहा जा सकता है।

विक्रम सवत् १७०० के लगभग चिंतामणि के द्वारा काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के प्रणयन के अनंतर तो फिर व्रजभाषा हिंदी मे रीतिग्रंथों की बाढ़ आ गई। आचार्यम्मन्य कवियों के द्वारा काव्यशास्त्रीय विभिन्न तत्वों और अंगों का निरूपणक्रम चलता रहा। इन ग्रंथकारों और ग्रंथों की सख्या विपुल है। अभी भी कई ऐसे ग्रंथकार हैं जिनकी कृतियाँ अनुपलब्ध हैं। उनके ग्रथ व्यक्तिगत पुस्तकालयों की शोभा बढा रहे हैं। अथवा अनपढ व्यक्तियों के घरों में दीमक का भक्ष्य बन रहे हैं। अभी भी इन्हें खोज कर प्रकाश में ले आने की आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी है।

आचार्य चिन्तामणि के बाद सवत् १६६१ में तोष ने सुधानिधि नामक रस-ग्रंथ रचा। इस ग्रथ में नवरसों, भावों, भावोदय आदि वृत्तियों और नायिका-भेदों का समुचित प्रतिपादन है। जोधपुर के नरेश महाराज जसवंत सिंह ने भाषाभूषण नामक अलकारग्रंथ अठारहवीं सदी के प्रारभ में लिखा। यद्यपि इसमे चद्रालोक की पद्धति पर मुख्यतः अलंकारों का ही सोदाहरण प्रतिपादन दोहों में किया गया है, पर ग्रथ के प्रथम प्रकरण मे यत्किंचित् रसनिरूपण भी है। इसी समय के आस पास चिंतामणि के भाई मतिराम, भूषण और जटाशंकर ने भी रीतिग्रथों की रचना की। मतिराम ने रसराज, ललितललाम, साहित्यसार, अलकारपचाशिका और लक्षणशृगार नामक पॉच काव्यशस्त्रीय ग्रथ रचे थे। इनमे से रसराज, साहित्यसार और लक्षणशृंगार तो रसशास्त्रीय ग्रंथ हैं, शेष दो अलंकारग्रंथ हैं। रसराज में रीतिकालीन परंपरा के अनुसार समस्त अंगों के साथ रसराज शृंगार का निरूपण किया गया है। साहित्यसार मे केवल नायिका-भेद का उल्लेख है और लक्षणशृगार में भावों और विभावों का वर्णन है। भूषण वीर रस के सुप्रसिद्ध कवि होने के साथ ही आलंकारिक भी थे। इन्होंने संवत् १७३० के आस पास 'शिवराजभूषण' नामक एक अलकारग्रंथ रचा।

चिंतामणि के भाइयों में जटाशंकर ने प्रायः कोई काव्यशास्त्रीय ग्रंथ नहीं रचा।

इसी समय के आसपास आचार्य कुलपति मिश्र का आविर्भाव हुआ। इन्होंने 'रसरहस्य' और गुण-रस-रहस्य' नामक दो काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचे। रसरहस्य संवत् १७२७ में रचा गया था। इसके आठ वृत्तातों में काव्य के समस्त अंगों का निरूपण है। कुलपति सच्चे अर्थ मे आचार्य प्रतीत होते है, क्योंकि विभिन्न संस्कृत के आचार्यों के लक्षणों को अपनी 'वचनकाओं' में समीक्षात्मक ढंग से प्रस्तुत करने के वाद ही ये अपने लक्षणों को सप्रमाण निर्धारित करते पाए जाते हैं। सुखदेव मिश्र भी इसी समय के आचार्य हैं। इन्होंने संवत् १७२० से लेकर संवत् १७६० के बीच अनेक ग्रंथ रचे। वे हैं—वृत्तविचार, छंदविचार, रसार्णव, शृंगारलता, पिंगल और फाजिल अलीप्रकाश। इनमे से वृत्तविचार, छदविचार और पिंगल ये तीन ग्रंथ तो छंद सवंधी हैं। शृंगारलता का परिचय अभी तक अप्राप्त है। रसार्णव में रसों का सामान्यतः और विशेषतः रसराज शृंगार और नायक-नायिका-भेदों का विवरण है। सुखदेव के वाद रामजी, गोपालराय बलिराम, वलवीर, कल्यानदास प्रभृति अनेक कवियों ने रीति ग्रंथों की रचना की पर वे प्रतिपाद्य विषयवस्तुओं की दृष्टि से सर्वथा अमहत्वपूर्ण हैं।[२१]

अव हिंदी काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य देव का रचना काल आया। इनका रचनाकाल सवत् १७४६ से लेकर सवत् १७६० तक माना जाता है। इनके द्वारा रचे गए ७२ ग्रथों की चर्चा शुक्ल जी ने की है। इनमे से २५ ग्रंथों को तो रीतिग्रंथ वताया जाता है। पर प्रसिद्धि की दृष्टि से तथा काव्यशास्त्रीय प्रतिपादन के महत्व की दृष्टि से ये चार ग्रंथ ही उल्लेखनीय हैं—रसविलास, भवानीविलास, भावविलास और काव्यरसायन। रसविलास इनके अंतिम काल की रचना है। इसे संवत् १७८३ में रचा गया था। रसविलास और भवानीविलास मे रसनिरूपण है, भावविलास में रसों और अलंकारों का उल्लेख है तथा काव्य रसायन मे काव्य के विभिन्न अंगों का प्रतिपादन किया गया है।

अव तक हिंदी साहित्य में रीतिपरंपरा वद्धमूल सी हो गई। सवत् १७५० से सवत् १६०० तक का काल रीतिसाहित्य का उत्कर्ष काल है। इस अवधि मे लक्षणग्रंथों के प्रणयन के विना तत्कालीन साहित्य जगत् में प्रसिद्धि पाना नितात कठिन हो गया था। अतएव लक्षण-ग्रंथ-प्रणेताओं की विपुल सख्या सामने आई। इनमें उल्लेखनीय आचार्य ये हुए—सूरति मिश्र, कुमारमणि

२१. शुक्ल, हि० सा० का इति०, पृ० २६४।

भट्ट, श्रीपति, सोमनाथ, रसलीन, उदयनाथ, भिखारीदास, रतनकवि, करन कवि, पद्माकर, रसिकगोविद, प्रतापसाहि आदि ।

आगरे के सूरति मिश्र की कृतियों के नाम हैं - अलंकारमाला, रसरत्नमाला, रसग्राहकचंद्रिका, काव्यसिद्धात, रसरत्नाकर आदि । इन्होंने ब्रजभाषा गद्य मे केशव की कविप्रिया और रसिकप्रिया पर टीकाए भी लिखी थीं। इन टीकाओं के नाम हैं—जोरावर प्रकाश और रस-ग्राहक-चद्रिका जो अभी भी हस्तलिखित रूप मे रमणलाल चौधरी, बाजार कोसी (मथुरा) के पास सुरक्षित हैं।[२२] यों सूरति मिश्र के सभी ग्र थ रस और अलकार से सबद्ध हैं, पर इनके ग्र थों मे काव्यसिद्धात सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसने काव्य के समस्त अगों का एकत्र निरूपण किया गया है। कुमारमणि भट्ट ने रसिकरसाल नामक ग्र थ सवत् १७७६ में लिखा था। इसमें काव्यप्रकाश के आधार पर काव्य के सभी अगों का निरूपण किया गया है।

हिंदी के इसी उत्कर्ष काल में आचार्य श्रीपति का उदय हुआ। इन्होंने भी अनेक लक्षण ग्रंथ लिखे—कविकुलकल्पद्रुम, रससागर, अनुप्रासविनोद, विक्रमविलास, सरोजकलिका, अलंकारगंगा और काव्यसरोज। इन सभी ग्रंथों में काव्यसरोज अधिक महत्वपूर्ण है। इसकी रचना १७७७ में हुई थी। इनका एकमात्र यही ग्रंथ उपलब्ध भी है। श्रीपति ने इस ग्रंथ के दोषदल (दोषप्रकरण) में अन्य कवियों और आचार्यों की रचनाओं को उदाहृत किया है। सवत् १७८६ में रसिक सुमति ने अलंकारचंद्रोदय की रचना की जिसमें कुवलयानंद की पद्धति पर अलंकारों का प्रतिपादन किया गया है। तदनंतर सवत् १७६४ मे आचार्य सोमनाथ ने रसपीयूषनिधि नामक लक्षणग्रंथ रचा। इस ग्रंथ में एक साथ ही पिंगल, काव्यलक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, रीति, गुण और दोष आदि सभी काव्यागों का निरूपण किया गया है। यह एक विशाल ग्रंथ है और इतिहासकारों ने इसकी बडी प्रशंसा की है। इसके बाद गोविंद के कर्णाभरण की रचना सवत् १७६७ में हुई। इसमें मात्र अलकारों के लक्षण उदाहरण हैं। रसलीन ने सवत् १७६८ में रसप्रबोध की रचना की जिसमें नौ रसों और उनके उपादानों का परंपरागत ढंग से विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया गया है। रघुनाथ ने काव्यकलाधर और रसिकमोहन नामक दो रीतिग्रंथ रचे। इन दोनों में रसनिरूपण ही है। रसिकमोहन मे सभी रसों का उल्लेख है और काव्यकलाधर में नायिकाभेद पर विशेष जोर दिया गया है।

२२. डा० विजयपाल सिंह, केशव और उनका साहित्य, १६६१ ई०, पृ० ६८।

इसी समय हिंदी काव्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भिखारीदास (या दास) का प्रादुर्भाव हुआ। दासरचित काव्यशास्त्रीय कृतियों में इतनी तो निर्विवाद हैं—रससाराश, छंदार्णव, पिंगल, काव्यनिर्णय। इन सभी ग्रंथों में भी काव्य-निर्णय अधिक प्रसिद्ध है। इसमें काव्य के सभी अंगों का निरूपण है। काव्य-सिद्धांत की मान्यता की दृष्टि से दास ध्वनिवादी प्रतीत होते हैं। काव्यनिर्णय के छठे उल्लास में उन्होंने ध्वनि का बड़ा स्पष्ट एवं मार्मिक निरूपण किया है। दूलह कवि, बैरीसाल, समनेस और ऋपिनाथ प्रभृति आचार्य-कवियों ने भी रीति ग्रंथ रचे, पर वे उतने प्रसिद्ध नहीं हैं। अलकारनिरूपण की दृष्टि से दूलह प्रणीत कविकुलकंठाभरण एक प्रसिद्ध रचना है। रतन कवि ने इसी समय के आसपास दो ग्रंथ रचे थे—फतेहभूपण और अलंकारदर्पण। फतेहभूपण में काव्य के विभिन्न अगों का प्रतिपादन है, पर अलंकारदर्पण में केवल अलंकारों के लक्षणों और उदाहरणों का विवरण है। शुक्ल जी के अनुसार इन दोनों ग्रंथों का रचनाकाल संवत् १८३० है। इसके अनतर जनराज का कवितारसविनोद, उजियारे कवि के जुगुलरसप्रकाश और रसचंद्रिका, यशवत सिंह का शृंगार शिरोमणि, जगत सिंह का साहित्यसुधानिधि आदि रीतिग्रंथों की रचना हुई।

रीतिकालीन काव्यशास्त्र के अंतिम मूर्धन्य आचार्य पद्माकर हुए। शुक्ल जी ने इनके आचार्यत्व की अपेक्षा कवित्वशक्ति और कल्पनानैपुण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[२३] पद्माकर के जगद्विनोद को उन्होंने मतिराम के रसराज की कोटि की रचना माना है। पद्माकर की रचनाओं मे काव्यशास्त्रीय कृतिया दो ही हैं—पद्माभरण और जगद्विनोद। जगद्विनोद संवत् १८६७ के आसपास की रचना है और इसमे रस, भाव, नायिकाभेद आदि का निरूपण है। पद्माभरण विशुद्ध अलकारग्रंथ है और इसकी रचना बैरीसाल के भापाभरण के आधार पर की गई है। इनके उदाहरण बडे ही सरस एवं चित्रात्मक हैं।

पद्माकर को अतिम उल्लेख्य आचार्य मानने का यह तात्पर्य कदापि नहीं समझना चाहिए कि व्रजभापा हिंदी के रीतिग्रंथों की परपरा यहीं समाप्त हो गई। इसके बाद भी लगभग ५० वर्षों तक व्रजभापा के माध्यम से रीतिग्रंथों की रचना होती रही। उसके बाद यह दायित्व खड़ी बोली पर आ गया और गद्य के माध्यम से काव्यशास्त्रीय चिंतन की परंपरा का आरंभ हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अतिम चरण मे दो और आचार्य हुए—रसिक-गोविंद और प्रताप साहि। यों तो रसिकगोविंद प्रणीत नौ पुस्तकों का पता

२३. हि० सा० का इति०, ३०९-३१०।

इतिहास ग्र थों से चलता है पर उनमे काव्यशास्त्रीय कृतित्व एक मात्र 'रसिकगोविंदानदघन' ही है। इसमें रस, अलंकार आदि सभी काव्यागों का निरूपण है। इस ग्र थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लक्षण तो ब्रजभाषा गद्य में दिए गए हैं और उदाहरण पद्य मे। साथ ही इसमें अनेक आचार्यों के मतों को उद्धृत करने के अनंतर ग्रंथकर्ता ने अपने लक्षण और उदाहरण दिए हैं। प्रताप साहि का रचनाकाल सवत् १८८० से लेकर १९०० सवत् पर्यंत माना जाता है। प्रताप साहि ने भी लगभग नौ ग्र थ रचे थे। पर इनमें काव्यशास्त्रीय विषयों से सबद्ध ग्र थ पाँच है—काव्यविनोद, शृ गारमजरी, अलकारचिंतामणि, काव्यविलास और व्यग्यार्थकौमुदी। इन सभी ग्र थों को मिलाकर देखने से शायद ही काव्य का कोई अग निरूपित होने से अवशिष्ट मिल सके।

विक्रम सवत् १९०० के बाद भो रीतिग्र थों की रचना ब्रजभाषा हिंदी के माध्यम से होती रही पर जिस त्वरा और यशोलिप्सा से ये रचनाएँ सवत् १९०० के पूर्व लिखी जाती रहीं वे परिस्थितियाँ अब न रहीं। अतएव इस काल को ब्रजभाषा काव्यशास्त्र के इतिहास में ह्रासकाल मानना ही उचित है। अब ब्रजभाषा काव्यशास्त्र की आधारशिला पर खड़ीबोली की गद्यात्मक कृतियों के आगार बनने जा रहे थे। तथापि इस क्षीयमाण युग में भी कई ऐसे आचार्य हुए जिन्होंने अलकार, रस या नायिकाभेद पर ब्रजभाषा में अनेक रीतिग्रंथ लिखे। इस युग के काव्यशास्त्रियों में रामदास, ग्वालकवि, लछिराम, लेखराज, गुलाबसिंह, कविराजा मुरारिदान, गगाधर, महराजा प्रतापनारायण सिंह प्रभृति स्मरणीय हैं। रामदास ने सवत् १९०१ में समस्त काव्यागनिरूपक कविकल्पद्रुम नामक ग्र थ लिखा। ग्वालकवि ने रसरग नामक रसनिरूपक रीतिग्र थ रचा। लछिराम ने तो अनेक काव्यशास्त्रीय ग्र थ रचे जिनमे महेश्वरविलास और रावणेश्वरकल्पतरु अधिक प्रसिद्ध हैं। लेखराज ने सवत् १९३५ में गगाभरण नामक एक अलकारग्र थ रचा। इन्होंने स्वीकार किया है कि अलकारों के व्याज से मैंने गंगा का ही गुणगान किया है।[२४] अतएव ये काव्यशास्त्री होने की अपेक्षा भक्त अधिक प्रतीत होते हैं। गुलाबसिह ने वनिताभूषण नामक रीतिग्र थ लिखा है। इस ग्र थ की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें नायिकाभेदों और अलकारों का एक साथ निरूपण किया गया है। कविराजा मुरारिदान का जसवतभूषण, प्रतापनारायण सिंह का रसकुसुमाकर और गगाधर प्रणीत महेश्वरभूपण—ये सभी रीतिग्र थ भी ब्रजभाषा पद्य के माध्यम से ही लिखे गए।

२४. गंगाभरण, छंद १०।

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' और विहारीलाल भट्ट कालसीमा की दृष्टि से यद्यपि सवत् १९५० के बाद आते हैं तथापि इनकी रचनाए आधुनिक होने की अपेक्षा रीत्यात्मक अधिक हैं। भानु जी ने सवत् १९६६ में काव्यप्रभाकर नामक ७८६ पृष्ठों का एक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचा। यह ग्र थ तो खड़ी बोली गद्य में लिखा हुआ है, पर प्रस्तावना अँगरेजी मे लिखी गई है। ग्र थ के बारह मयूखों में क्रमशः छद, ध्वनि, नायिकाभेद, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, स्थायी भाव, रस, अलंकार, दोप, काव्यनिर्णय, और कोश-लोकोक्ति-सग्रह की अत्यत विस्तार के साथ विवेचना की गई है। ग्र थ का विशाल कलेवर होने के कारण मौलिक चिंतन या प्रतिपादन नहीं बल्कि अनेक सस्कृत, हिंदी के लक्षणों और उदाहरणों का सकलन ही है। जो हो, पर यह एक अनेकांग निरूपक ग्र थ है। विहारीलाल भट्ट ने सवत् १९९४ मे साहित्यसागर नामक ग्र थ रचा। ग्र थ दो भागों मे विभाजित है और कुल मिलाकर इसमें १५ तरगें हैं। ग्र थ में साहित्य के सभी अगों का निरूपण किया गया है, यहा तक कि नाटक और गद्यकाव्य का भी। इस दिशा मे इस ग्र थ पर साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) का पर्याप्त प्रभाव है। ग्र थ की अतिम तीन तरगो में आध्यात्मिक नायिकाओं के भेद, निर्वाण और दानप्रकरण भी जोड़ दिए गए हैं।

इस प्रकार सातवीं सदी के आचार्य पुष्य के युग से लेकर सवत् १९६६–७० पर्यंत हिंदी के रीतिग्रथों का क्रमिक विकास होता रहा। कृपाराम से प्रताप नारायण और गगाधर के युग तक (सवत् १५९८ से संवत् १९५० पर्यंत) जितने भी लक्षणग्र थ हिंदी मे लिखे गए उनका माध्यम ब्रजभापा पद्य रहा। इन ग्र थों मे सर्वांशतः मौलिकता तो कहीं नहीं है। पर आंशिक मौलिकता अनेक आचार्यों मे विद्यमान हैं। इस दृष्टि से केशव, चिंतामणि, कुलपति, देव, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि आदि उल्लेखनीय हैं। संवत् १९५० के अनतर हिंदी काव्यशास्त्रीय चिंतन की दिशा परिवर्तित हो गई। ब्रजभाषा पद्य के स्थान पर खडी बोली गद्य का माध्यम स्वीकृत किया गया। यह हिंदी काव्यशास्त्र के विकास का उत्तरार्द्ध खंड है। तथापि इस कालखड मे भी जगन्नाथप्रसाद 'भानु' और विहारी भट्ट जैसे कुछ एक आचार्य हुए जो प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकालीन परंपरा के अधिक निकट हैं। किंतु ये दो चार समीक्षक अपवाद ही हैं।

४. रीतिकाल के तीन काव्यसंप्रदाय

हिंदी के रीतिग्रथों का या आचार्यों का साप्रदायिक वर्गीकरण थोड़ा दुष्कर अवश्य है क्योंकि इनकी प्रवृत्ति स्थिर नहीं थी। किसी एक काव्यदिशा में प्रवृत्त होकर किंवा किसी एक काव्यसंप्रदाय को अपनाकर सिद्धात ग्रथ लिखना इन्होंने सीखा ही नहीं था। परपरागत संस्कृत काव्यशास्त्र का ज्ञानसंभार इन्हें उपलब्ध तो

हुआ, पर उसे विना पचाए ही ये काव्यशास्त्रीय ग्रथों के निर्माण में लग गए। परिणाम यह हुआ कि इनके काव्यशास्त्रीय विचार नए काव्यसप्रदाय को जन्म देने में तो नितांत असमर्थ रहे ही बल्कि परंपरागत काव्यसंप्रदायों का अनुमोदन भी व्यवस्थित रूप में इनके द्वारा सभव न हो सका।

रीतिग्रथों के वर्गीकरण की दिशा में कई विद्वानों ने प्रयत्न किए हैं। डा० नगेंद्र ने शैली के आधार पर इन ग्रथों का वर्गीकरण किया है। डा० ओमप्रकाश और डा० भगीरथ मिश्र ने काव्यागों के आधार पर एकागनिरूपक, अनेकांगनिरूपक आदि भेद वताए हैं। रीतिकाल के कवि दूलह ने भी रीतिकवियों के चार प्रभेद प्रतिपादित किए थे—सत्कवि, कर्ता, अलकृती और कवि। किंतु इन सारे वर्गीकरणों का अपना महत्व रहते हुए भी रीतिकालीन आचार्यों के सैद्धातिक अभिमत स्पष्ट नहीं हो पाते हैं। अतएव इनके ग्रथों के तात्विक एव तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर रीतिकालीन काव्यसप्रदायों का निर्धारण वाछित है।

मेरी धारणा है कि रीतिकालीन आचार्य भी सस्कृत काव्यशास्त्र के प्रणेता आचार्यों की तरह किसी न किसी विचारधारा-विशेष के पोषक या अनुयायी थे, चाहे यह विचारधारा उन्हें परपरा से ही क्यों न प्राप्त हुई हो। जिस प्रकार समस्त सस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों को हम रस, रीतिगुण, अलकार, औचित्य, ध्वनि आदि काव्यतत्वों के प्रतिपादन समर्थन के कारण छह सप्रदायों में विभक्त पाते हैं, उसी प्रकार ये रीतिकालीन आचार्य भी रससप्रदाय, अलकारसंप्रदाय और ध्वनिसंप्रदाय में विभक्त हैं। इस युग में आकर रीतिगुण, वक्रोक्ति और औचित्य का प्रतिपादन किसी आचार्य ने नहीं किया। सच पूछिए तो इन काव्यतत्वों के आधार पर वने काव्यसंप्रदाय सस्कृत युग मे ही अमान्य हो गए थे। अतएव ये हिंदी के रीतिकाल मे उज्जीवित न हो सके। कहने का तात्पर्य यह कि इस युग मे रीतिगुण, वक्रोक्ति और औचित्य पर स्वतत्र ग्र थ नही लिखे गए। पर इतना निश्चित है कि रीतिकालीन सिद्धात ग्रथों में भी किसी किसी आचार्य ने रीति या वृत्ति का काव्याग के रूप में निरूपण किया है। मतिराम, पद्माकर, विहारी आदि की रचनाओं में अनेक वक्रोक्तिपूर्ण कविताए भी उपलब्ध हैं। तथापि वक्रोक्ति का कुतलीय वक्रोक्ति के अर्थ मे शास्त्रीय निरूपण कही भी उपलब्ध नहीं होता है। अधिक से अधिक वक्रोक्ति को शब्दालकार के रूप में ग्रहण किया गया है। औचित्य की तो किसी रीतिग्रंथ में चर्चा भी नहीं है। फलतः अलकारसप्रदाय, रससप्रदाय और ध्वनिसप्रदाय—ये तीन काव्यसप्रदाय ही हिंदी के रीतिकालीन काव्यशास्त्र में वचे रहे, ऐसा मानना चाहिए। इन्हीं तीन काव्यसंप्रदायों के आधार पर हिंदी काव्यशास्त्र के रीतिकालीन आचार्यों का वर्गीकरण नितात वाछनीय एव उपयुक्त है।

साम्प्रदायिक वर्गीकरण के लिये मैंने तीन आधारों को माना है। वे आधार इस प्रकार हैं—

१—जिन्होंने केवल अलकारग्रंथ लिखे हैं, निःसदेह उनकी प्रवृत्ति अलकारों की हैं। अतएव ऐसे आचार्य अलकारसप्रदाय के हैं।

२—जिन आचर्यो ने केवल रसनिरूपक ग्र थ, नायिकाभेदपरक ग्र थ रचे हैं, वे वस्तुतः किसी न किसी रूप में रसतत्व का ही अनुमोदन करते हैं। अतएव इन रस-रीति मात्र के निरूपक आचार्यों को रससप्रदाय में निवेशित करना चाहिए।

३—जिन आचर्यों ने अनेक प्रकार के रीतिग्रथ लिखे हैं अर्थात् अलकारग्रथ, नायिका भेद ग्रथ, अनेकाग-निरूपक काव्यशास्त्र आदि किंवा एक ही ग्र थ में काव्य के अनेक काव्यागों का निरूपण किया है, इन्हे इन्हीं के द्वारा प्रतिपादित काव्या-दर्शों के आधार पर किसी अन्यतम संप्रदाय में समाविष्ट करना चाहिए।

रससंप्रदाय

उक्त आधारों को ध्यान में रखकर मैं कृपाराम, सूरदास, नंददास, केशव, चिंतामणि, तोप, मतिराम, सुखदेव, देव, सूरति मिश्र, रसलीन, पद्माकर, रसिक-गोविद, श्रीपति और ग्वाल को रससप्रदाय के आचार्य मानता हूँ। इनमे से कृपाराम, सूरदास, नददास, तोप, सुखदेव और रसलीन इसलिये रससप्रदाय के आचार्य माने जायँगे कि उन्होंने मात्र रसनिरूपक, नायिकाभेद निरूपक या शृ गारनिरूपक रसग्र थ ही रचे हैं। केवल इसी कोटि के ग्र थों को रचकर इन्होंने रसवादिता का ही परिचय दिया है। यह बात और है कि रससिद्धात निरूपण की दृष्टि से इनमें से किसी का महत्व अल्प हो या अधिक हो, पर ये सभी नि सदेह रससप्रदाय के आचार्य हैं। आचार्य केशव को पं० रामचद शुक्ल ने अलकार-वादी कहा है। इसका मुख्य कारण यह था कि इन्होंने कविता, वनिता और मित्त (मित्र) की अलकारयुक्तता पर जोर दिया था।[२५] साथ ही कविप्रिया नामक रीतिग्र थ मे अलकारों का निरूपण भी किया है। मेरी दृष्टि मे केशवदास एक रसवादी आचार्य हैं। क्योंकि इन्होंने रस पर रसिकप्रिया नामक एक स्वतन्त्र ग्र थ रचा है। जहाँ तक कविप्रिया का संबंध है, वह एक-मात्र अलंकार निरूपक ग्र थ नहीं हैं बल्कि उसमें अनेकागों का निरूपण हुआ है। दूसरी बात यह कि रसिक-प्रिया मे भक्ति और शृ गार की मिश्रित रसधारा के प्रवर्तन का श्रेय केशव को प्राप्त है। अलकारों के क्षेत्र में इन्होंने वैसी कोई सैद्धातिक नवीनता प्रदर्शित नहीं की है। इसके अतिरिक्त अपने दोनों ग्रंथों के आरभ मे इन्होंने स्पष्टतः लिखा

२५. कविप्रिया, १।५।

है कि कविप्रिया की रचना बालकों के लिये की गई है तथा रसिकप्रिया की रचना परिपक्वबुद्धि रसिकों के लिये—

क- समझै बाला-बालकनि बरनन पथ अगाध।
कविप्रिया 'केशव' करी छमिजो बुध अपराध॥

—कविप्रिया, ३ । १

ख- रसिकन को रसिकप्रिया कीनी केशवदास।

—रसिकप्रिया, १ । १२

अतएव केशवदास निःसंदेह एक रसवादी आचार्य थे। इतना अवश्य है कि कवि के रूप में इनमें अलंकारप्रियता अधिक मात्रा में विद्यमान थी। आचार्य चिंतामणि ने एक ओर शृंगारनिरूपक शृंगारमंजरी लिखी और दूसरी ओर अनेकांग निरूपक कविकुलकल्पतरु और काव्यप्रकाश जैसे ग्रंथ लिखे। फिर भी आपके काव्यादर्श रससिद्धांत के अनुकूल ही थे—

क- बतकहाउ रस मे जु है कवित्त कहावे सोय।

—कविकुलकल्पतरु, १।४

ख- सबै अर्थ लघु वर्णिये, जीवित रस जिय जानि।
अलंकारहारादि ते उपमादिक गन आनि॥

—वही, छंद ६

मतिराम ने ललितललाम नामक अलंकारग्रंथ लिखा और रसराज तथा साहित्यसार नामक नायिकाभेदपरक एवं शृंगारनिरूपक रसग्रंथ भी। फिर भी इन्होंने स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है कि ललितललाम की रचना अपने आश्रयदाता राजा भावसिंह की तुष्टि के लिये की गई और रसराज की रचना सहृदय काव्यमर्मज्ञों की परितुष्टि के लिये। मतिराम की निम्नोक्त उक्तियों से उनकी सैद्धांतिक मान्यता के निर्धारण में सहायता ली जा सकती है –

क- भाव सिंह की रीझ कों कविता भूपनधाम।
ग्रंथ सुकवि 'मतिराम' यह कीनों ललितललाम॥

—ललितललाम, छंद ३८

ख- समुझि समुझि सब रीझिहैं सज्जन सुकवि समाज।
रसिकन के रस को कियो नयो ग्रंथ 'रसराज'॥

—रसराज, छद ४२७

फलतः सिद्ध है। कि मतिराम की व्यक्तिगत प्रवृत्ति रसवाद की ओर थी और ललितललाम का प्रणयन अलंकारवादी प्रवृत्ति के कारण नहीं बल्कि फरमायशी

दुराग्रह में पड़कर इन्हें करना पड़ा था। आचार्य देव ने रस-सामान्य-निरूपक, शृंगार और नायिकाभेद विषयक तथा अनेकांगनिरूपक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की अनेकविधता के कारण इनके संप्रदायविशेष का निर्धारण थोड़ा कठिन अवश्य है, तथापि इनके ग्रंथों के सम्यक् अनुशीलन से यह नितांत स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य तत्व रस को ही स्वीकृत किया है। इस संदर्भ में देव के निम्नोक्त उद्‌गार ध्यान देने योग्य है—

क— काव्य सार शब्दार्थ को, रस तिहि काव्यासार।
सो रस बरसत भावबस, अलंकार अधिकार॥
ताते काव्यामुख्य रस, जामें दरसत भाव।
अलंकार शब्दार्थ के, छंद अनेक सुगाव॥

—शब्दरसायन, प्रकाश ३, पृ० २८

ख— रहत न घरवर, धाम, धन, तरुवर, सरवर कूप।
जग सरीर जग मे अमर, भव्य काव्य रस रूप॥

—वही, प्र० १, पृ० १

सूरति मिश्र के ग्रंथ भी अनेक प्रकार के हैं। अलंकारनिरूपक, रस-सामान्य-निरूपक और अनेकांगनिरूपक—कई कोटियों के ग्रंथ इन्होंने रचे हैं। तथापि अपने काव्यादर्श के आधार पर ये रसवादी ही प्रतीत होते हैं। इन्होंने अपने काव्यसिद्धांत नामक ग्रंथ में लिखा है कि वही काव्य तथा कविकर्म महत्वपूर्ण है जहाँ मनोरंजनकारी अलौकिक रीति (रसरीति) का निवेश रहता है। अतएव अनेकविध रीतिग्रंथों के रचयिता होने के बावजूद भी सूरति मिश्र रसवाद के पोषक ही प्रमाणित होते हैं। पद्‌माकरप्रणीत दो प्रकार की रीतिरचनाएँ पाई जाती हैं—अलंकारनिरूपक पद्‌माभरण और रस-सामान्य-निरूपक जगद्विनोद। दोनों ग्रंथों के अंत में दिए गए रचनोद्देश्यपरक वाक्यों की तुलना से यह विदित होता है कि पद्‌माभरण के द्वारा इन्होंने युग में प्रचलित अलंकारपथ (अलंकार रीति) का पालन मात्र किया है और जगद्विनोद की रचना के द्वारा रसिकों (काव्यमर्मज्ञ सहृदयों) को मोदपुरःसर वशीकृत करना चाहा है। पद्‌माकर की निजी उक्तियाँ दोनों ग्रंथों में इस प्रकार है—

क— राधा माधव कृपा लहि लखि सुकविन को पंथ।
कवि पद्‌माकर ने कियो पद्‌माभरण सुग्रंथ॥

पद्‌माभरण, ३४४

ख— जगतसिंह नृप हुकुम तें पद्‌माकर लहि मोद।
रसिकन के वसकरन को कीन्हो जगतविनोद॥

—जगद्विनोद, ७३१

पद्माकर की अन्य काव्यकृतिया भी रससंमत ही प्रतीत होती हैं। अतएव इन्हें मूलतः रसवादी ही मानना चाहिए और इनके अलकारनिरूपण को युग की माँग के पूर्त्यर्थ स्वीकार करना चाहिए।

आचार्य श्रीपति की भी तीन वर्गों की रीति पुस्तकें हैं—अलकारनिरूपक अलंकार-गंगा, रसनिरूपक रससागर और अनेकागनिरूपक काव्यसरोज तथा काव्यकल्पद्रुम। तथापि इन्होंने काव्यसरोज मे सुस्पष्ट कहा है कि काव्य मे दोषों का अभाव तथा गुणों और अलकारों का अस्तित्व वाछनीय है पर रसों के विना कवितारूपिणी वनिता छविमती नहीं हो पाती है —

यद्यपि दोष विनु गुन सहित, अलंकार सो लीन।
कविता वनिता छवि नही, रसविन तदपि प्रवीन॥

काव्यसरोज, १३ । १

निष्कर्ष यह कि अन्य काव्यागों की अपेक्षा ये रसतत्व को ही अधिक महत्व प्रदान करते हैं। फलतः श्रीपति के रसवादो होने में किसी तरह की विप्रतिपत्ति नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार ग्वाल ने भी अलकारनिरूपक और अनेकाग-निरूपक रीतिग्रंथ तो लिखे है पर रस को चिदानदघन ब्रह्मसम मानकर इन्होंने अपनी रसवादिता को ही द्योतित किया हैं—

चिदानंदघन ब्रह्मसम, रस है श्रुति परमान।
दुविध सुरस लोकिक जु इक, दुतिय अलौकिक जान॥

—रसरग (ह० लि०), २ । २, पृ० ३६

रसिकगोविंद रचित 'रसिकगोविंदानदघन' एक अनेकांगनिरूपक रीतिग्रथ है। इसके अतर्गत रस और नायकनायिका का निरूपण तो है किंतु ध्वनि का नहीं अतएव जाहिर है कि रसिकगोविंद विशुद्ध रसवादी थे, रसध्वनिवादी नहीं।

उपर्युक्त अनुशीलन से यह सप्रमाण सिद्ध है कि इन आचार्यों ने हिंदी के रीतिसाहित्य में रससप्रदाय का ही पोषण किया है।

ध्वनिसंप्रदाय

कुलपति, भिखारीदास, प्रतापसाहि, सोमनाथ, कुमारमणिभट्ट, रामदास प्रभृति रीतिकालीन आचार्यों को निर्भ्रांत रूप से ध्वनिसंप्रदाय के अतर्गत रखा जा सकता है। यह उल्लेख निराधार नहीं है बल्कि उनके ग्रथों मे उपलब्ध सैद्धातिक मान्यताओं के आधार पर ही यह निर्णय किया गया है। सर्वप्रथम कुलपति को लीजिए। कुलपति ने रसरहस्य नामक रससामान्य निरूपक ग्रथ लिखा है। पर इन्होंने अपने ग्रंथ में आनदवर्द्धन और मम्मट की रसध्वनिपरपरा का ही अनु-सरण किया है। कहने का तात्पर्य यह कि इन्होंने व्यंग्य या ध्वनि को ही काव्य

की आत्मा माना है तथा असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि के अतर्गत ही रसभावादि का निरूपण किया है। कुलपति ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि ध्वनि (व्यंग्यार्थ) काव्यपुरुष की आत्मा है, शब्दार्थ देह है, गुण गुण हैं, अलंकार भूषण हैं, काव्य-दोष दूषण हैं और आत्मा (ध्वनि) की सिद्धि के लिये ही देह आदि साधनों की उपादेयता है—

व्यंग्य जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह।
गुन गुन भूषन भूषने दूषन दूषन एक॥
सो कवित्त है तान विधि उत्तम मध्यम और।
जीव सु रस पुनि देहै वलि जेहि ठौर॥

— रसरहस्य, १।३४-३५

इतना ही नहीं, ध्वनि की प्रधानता, गौणता और अस्फुटता के आधार पर ही इन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम इन त्रिविध काव्यभेदों को प्रतिपादित किया है और ध्वनिप्रधान काव्य को ही उत्तम काव्य की सज्ञा प्रदान की है। फलतः ये नि.सदेह ध्वनिवादी हैं। आचार्य भिखारीदास की तीन रचनाए हैं—रससारांश, शृ गारनिर्णय और काव्यनिर्णय। तीनों ग्रंथ तीन वर्ग के हैं। रससारांश मे रस-सामान्य का निरूपण है और शृ गारनिर्णय नायक-नायिकाभेद और मात्र शृ गार रस का निरूपक ग्र थ है तथा काव्यनिर्णय अनेकागनिरूपक काव्यशास्त्रीय ग्र थ है। अतएव भिखारीदास को रसवादी माना जाय या ध्वनिवादी, यह एक विवेच्य विषय है। एतदर्थ इनके काव्यादर्शों को टटोलना होगा। दास ने अपने अनेकाग निरूपक काव्यनिर्णय नामक ग्र थ में लिखा है कि रस भाव आदि यद्यपि भिन्न भिन्न रूप मे (रससाराश और शृ गारनिर्णय मे) प्रतिपादित किए गए हैं पर हैं वे व्यंग्य या ध्वनि ही—

भिन्न भिन्न यद्यपि सकल रस भावादिक दास।
रसै हि व्यंग सब कोउ कह्यो, ध्वनि को जहा प्रकास॥

—काव्यनिर्णय, उल्लास ४, पृ० १००

ऐसा सभी ध्वनिवादी आचार्यों ने भी माना है। फलतः ध्वनिवादी परपरा के अनुसार इन्होंने भी रस भावादिकों को असलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि में अतर्भुक्त किया है और ध्वनि की असख्यता के कारण इसका एक मात्र भेद ही स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त, चमत्कारी व्यंग्यार्थ से युक्त काव्य को ही उत्तम अर्थात् ध्वनिकाव्य भी माना है। निम्नोक्त उद्धरण इस सदर्भ मे ध्यातव्य हैं—

क- रसभावन के भेद की गनना गनी न जाइ।
एक नाम सब को कह्यो, रसै व्यंग ठहराइ॥

—काव्यनिर्णय, उ० ६, पृ० ११८

ख- वाच्य अर्थ में व्यंग मे चमत्कार अधिकार।
धुनि ताही को कहत हैं उत्तम काव्य विचार ॥

—वही, उ० ६, पृ० ११३

अतएव स्वतत्र रसग्रंथों के प्रणेता होने के वावजूद दास के सैद्धातिक आदर्श ध्वनिवाद के अनुकूल ही प्रमाणित होते है।

सोमनाथ का अनेकागनिरूपक ग्रथ रसपीयूपनिधि है। इसमें काव्य के सभी अंगों—रस, अलंकार, रीति, गुण, दोप, ध्वनि आदि पर विचार किया गया है। ऐसी स्थिति मे सोमनाथ का सप्रदायनिर्धारण भी दुष्कर है। मैंने उन्हे भी आनदवर्द्धन और मम्मट की रसध्वनि परंपरा में ग्रथित देखकर ध्वनिवादी ही स्वीकार किया है। यद्यपि २२ तरगों मे विभक्त सोमनाथ का रसपीयूपनिधि नामक ग्रथ विशालकाय है और उसमे काव्य के विभिन्न अंगों का वर्णन है, फिर भी ७वीं तरग से लेकर १८वीं तरग पर्यत—१२ तरगों में ध्वनि का विस्तृत विवरण इनकी ध्वनिवादी प्रवृत्ति का ही द्योतक है। साथ ही इनके काव्यादर्श भी ध्वनिवाद के पोपक हैं। मम्मट की भाँति इन्होंने भी व्यग्यप्रधान काव्य को उत्तम माना है। सोमनाथ की दृष्टि मे ध्वनि ही काव्यपुरुप की आत्मा है तथा शब्द और अर्थ हैं उसके अग—

क- व्यंग्य सरस जहं कवित्त में सो उत्तम उर आनि।

—रसपीपूपनिधि, ६।७

ख- व्यंगि प्राण अरु अंग सव, शब्द अरथ पहिचानि।
दोष और गुण अलंकृत दूषणादि उर आनि ॥

—वही, ६।६

सोमनाथ के ध्वनिवादी होने का एक और भी सवूत है, वह यह कि इन्होंने समस्त रसप्रपंच का उल्लेख ध्वनि के अतर्गत ही किया है। अतएव इन्हे ध्वनिवादी ही मानना चाहिए।

प्रतापसाहि के तीन रीतिग्रंथ हैं—व्यंग्यार्थकौमुदी, काव्यविलास और काव्यविनोद। ये तीनों ग्रंथ अनेकागनिरूपक कोटि के हैं। सभी काव्यागों की विचारणा के वावजूद भी काव्यसिद्धात की दृष्टि से ये ध्वनिसप्रदाय के अतर्गत ही परिगणित किए जायेंगे। प्रतापसाहि ने भी ध्वनिसप्रदाय के अन्य आचार्यों की भाति व्यग्यार्थ को काव्यप्राण, शब्दार्थ को काव्याग तथा व्यंग्ययुक्त काव्य को उत्तम काव्य प्रतिपादित किया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

व्यंग्य जीव है कवित मे, शब्द अर्थ गनि अंग।
सोई उत्तम काव्य है, वरने व्यंग प्रसंग ॥

—व्यग्यार्थकौमुदी, ३।५

अतएव इनका ध्वनिवादी होना नि.सन्दिग्ध है ।

कुमारमणिभट्ट का 'रसिकरसाल' भी अनेकागनिरूपक वर्ग का रीतिग्रंथ है। इन्होंने स्वयं घोषित किया है कि मम्मट के काव्यप्रकाश को हृदयंगम कर इस ग्रंथ की रचना भाषा में प्रस्तुत की गई है।[२६] यह बात और है कि इन्होंने मम्मट की विवेचना की सूक्ष्मता का पूर्णतः अनुसरण किया या नहीं पर काव्य-सिद्धात की दृष्टि से पूर्णतः मम्मट से सहमत हैं। अतएव कुमारमणिभट्ट को ध्वनि-वादी मानने मे किसी तरह की शका नहीं की जा सकती है। रामदास 'कविकल्पद्रुम' के प्रणेता आचार्य हैं। यह ग्रंथ भी अनेकागनिरूपक कोटि का है। तथापि सैद्धांतिक अभिमत की दृष्टि से रामदास ध्वनिवादी ही प्रतीत होते हैं। इन्होंने भी रस को ध्वनि के अतर्गत रखकर ही विवेचना प्रस्तुत की है।

फलतः ये और इन जैसे अन्य आचार्यों के सप्रदाय को ही रीतिकालीन हिंदी काव्यशास्त्र का ध्वनिसप्रदाय कहना चाहिए।

अलकारसंप्रदाय

जसवत सिंह, भूषण, गोप और दूलह को अलंकार सप्रदाय के आचार्यों की कोटि में रखना चाहिए। उक्त सभी आचार्यों ने रीतिकालीन शृंगारनिरूपण की प्रवृत्ति के प्रतिकूल मात्र अलकारनिरूपक ग्रंथ ही लिखे हैं। अतएव इनके अलकारवादी होने में किसी तरह के सदेह की गुंजादश ही नहीं है। फलतः इनके काव्यादर्शों या काव्यसिद्धांतों के अनुसंधान के विना ही इन्हें इनकी अलंकार प्रवृत्ति के आधार पर अलंकारवादी कहा जा सकता है।

५. रीतिकालीन विवेचना की परिसीमाएँ

रीलिकालीन रसशास्त्र के अध्ययन के पूर्व हमे उस युग की परिस्थितिजन्य सीमाओं को ध्यान मे ले आना चाहिए। अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब हिंदी (व्रजभाषा) माध्यम से भारतीय काव्यशास्त्र का चिंतन आरभ हुआ तो संस्कृत काव्यशास्त्र की चिंतनधारा पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। भिन्न भिन्न काव्य-सप्रदायों के माध्यम से अनेक मौलिक उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत की जा चुकी थीं। काव्यांगों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों के ताने वाने के द्वारा शास्त्रीय ज्ञान का रगीन एवं सुदृढ़ पट निर्मित हो गया था। ऐसी स्थिति मे रीतिकालीन आचार्यों को इस क्षेत्र में मौलिक चिंतन एव उद्‌भावना का अत्यल्प अवकाश प्राप्त था। सवसे वड़ी गलती इनके द्वारा यह हुई कि इन्होंने वर्गीकरण की दिशा मे ही न्यूनाधिक नवीनता प्रदर्शित करनी चाही, यद्यपि सस्कृत-युग में ही यह कार्य पराकाष्ठा को पार कर चुका था।

२६. रसिकरसाल, १।४।

अतएव इनके उद्भावन-प्रयास विफल ही रहे। इस युग के आचार्यों को मौलिक होने और विषयवस्तु को अग्रसारित करने का श्रेय तभी मिलता यदि इस युग के रसशास्त्र में रसस्वरूप, निष्पत्ति और साधारणीकरण जैसे गंभीर विषयों का विवेचन किया गया होता। कवियों के व्यक्तित्व का अध्ययन कर रसशास्त्र की नूतन व्याख्या का अभी पर्याप्त अवकाश इन्हें प्राप्त था किंतु रीतियुगीन आचार्यों का ध्यान इस ओर न गया। इसी प्रकार पश्चिम में अब तक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रारंभ हो गया था और उस आलोक में रसशास्त्र की व्याख्या की यदि इन्होंने चेष्टा की होती तो इन्हें पूरी सफलता मिली होती। पर ऐसा भी संभव न हो सका। इनका अध्ययन भी अत्यंत सीमित था। कुछ एक परवर्ती संस्कृत काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों के अधकचरे ज्ञान के आधार पर ही इन्होंने शास्त्रीय गंभीर चिंतन का दायित्व उठा लिया। परिणामतः परंपरागत घिसी पिटी बातों को ब्रजभाषा के माध्यम से दुहरा देने के सिवाय इनके पास अन्य कोई सरणि भी नहीं थी।

अपने प्रतिपाद्य विषयों को व्यक्त करने के लिये समुन्नत एवं सशक्त गद्यात्मक माध्यम का संबल भी इन्हें प्राप्त न था। जिन सामंतों, रईसों और अमीरों के आश्रय में रहकर तत्प्रदत्त टीकरों पर ये पलते थे, वे काव्यरसिक तो थे पर उनकी चेतना अधिक जाग्रत न होने के कारण विवेचन की जटिल गुत्थियों में उलझने से घबड़ाती थी। संस्कृत काव्यशास्त्र की चिंतनधारा जो विवेचना की बारीकियों और तर्क वितर्क के घटाटोपों से बोझिल होकर सदियों से प्रवाहित होती चली आ रही थी, इस युग तक आते आते ह्रासोन्मुख ही नहीं प्रत्युत क्षीणता को प्राप्त कर चुकी थी, भले ही पंडितराज जगन्नाथ जैसे आचार्य इसके अपवाद रहे हों। परिस्थितिजन्य इन्हीं सीमाओं के अभ्यंतर रीतिकालीन आचार्यों को काव्यशास्त्र की चिंतना करनी पड़ी थी। आज उनकी मौलिकता के अनुसंधायकों को उपर्युक्त सीमाओं और प्रतिबंधों को ध्यान में रखते हुए ही रीतिकालीन रसशास्त्र की सफलता विफलता का मूल्यांकन करना चाहिए।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि रीतिकाल के आचार्य सर्वथा हीन एवं उपेक्षणीय हैं। इस संदर्भ में थोड़ी उदारता बरतनी होगी। हमें यह भी ज्ञात है कि संस्कृत काव्यशास्त्र के सुदीर्घ [illegible] इतिहास में भी सभी आचार्य समान रूप से मौलिक नहीं थे। काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के [illegible] आचार्य इने गिने ही थे। प्रायः प्रत्येक काव्यसंप्रदाय के [illegible] एक ही ऐसे आचार्य उपलब्ध होते हैं जिन्हें हम सर्वांशतः [illegible] कह सकते हैं। भरत, भामह, वामन, दंडी, आनन्दवर्धन, कुंतक, क्षेमेन्द्र, [illegible] कुछ एक ऐसे ही आचार्य हैं जिनका [illegible]

हुई है। वस्तुतः काव्यशास्त्र के स्रष्टा या सिद्धांत प्रवर्तक ये ही आचार्य थे। अन्य आचार्यों ने इन्हीं के द्वारा प्रवर्तित काव्यसिद्धातों का भाष्य किया है। प्रत्येक काव्यसंप्रदाय में जैसे शास्त्रकार आचार्य हैं, वैसे ही अनेक भाष्यकार भी। अपनी भाष्यकरी वृत्ति के प्रसग मे कहीं कहीं विवेचना की सूक्ष्मतम सतह पर जाकर इन्होंने भी अनेक नई बातें प्रतिपादित की हैं पर मुख्यतः अपने पूर्ववर्ती काव्य-सिद्धातों का पुनराख्यान या तुलनात्मक अध्ययन ही इनके ध्येय और कार्य रहे हैं। ऐसे भाष्यकार आचार्यों में हम उद्भट, रुय्यक, भट्टलोल्लट, शकुक, भट्ट-नायक, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ प्रभृति आचार्यों को गृहीत कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त, संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों का एक तीसरा वर्ग भी है जिन्हें हम कविशिक्षक कह सकते हैं। काव्यशास्त्रीय सिद्धातों किंवा किसी एक सिद्धात को आधार बनाकर सरल भाषा मे उनका प्रतिपादन कर देना ही इनका लक्ष्य था। विवेचना की ऊहापोह किंवा तर्क वितर्क के आडंबर से सर्वथा विलग रहकर ही इन्होंने अपने ग्रंथ प्रस्तुत किए हैं। ऐसे कविशिक्षक आचार्यों मे विद्या-नाथ, जयदेव, केशव मिश्र, अप्पय दीक्षित, भानुदत्त प्रभृति आचार्यों की गणना होनी चाहिए।

हिंदी साहित्य के ये रीतिकालीन आचार्य न तो शास्त्रस्रष्टा थे और न भाष्य-लेखक, वस्तुतः ये कविशिक्षक थे। कवियों और काव्य रसिकों को सरल हिंदीपद्य के माध्यम से काव्यशास्त्रीय गहन विषयों को समझा देने का प्रयास ही इनके आचार्यत्व की मुख्य उपलब्धि है। फलतः इनके ग्रथों मे सैद्धातिक मौलिकता का अनुसधान ही इन्हें परिधि से बाहर ले जाकर देखने का प्रयास है। फिर भी इतना अवश्य कि यदि ये आचार्य हिंदी के माध्यम से प्राचीन सैद्धातिक समीक्षा-शास्त्र को जगाए न रखते तो आज हिंदी साहित्य का संबंध प्राचीन काव्यसिद्धातों से सर्वथा विच्छिन्न हो गया होता। आधुनिक भारतीय भाषाओं के विभिन्न साहित्यों में यह श्रेय केवल हिंदी को ही प्राप्त है (मराठी को भी) कि सस्कृत काव्यशास्त्र की चिंतनधारा निरवच्छिन्न रूप से प्रवाहित होकर आज भी इसकी जड़ों को सींच रही है। आज भले ही किसी भारतीय भाषा के साहित्य मे दो-चार रसालंकारों से सबद्ध ग्रथ लिख लिए गए हों, पर, ऐसा कहीं नहीं देखा जाता कि सस्कृत काव्यशास्त्र-गगन के अतिम अस्तगत दिनमणि जगन्नाथ का आलोक आँखों से ओझल भी नहीं हो पाया कि केशव और चितामणि से लछिराम तक या अर्वाचीन काल तक आइए तो डा० नगेंद्र तक, क्रमश. शताधिक नक्षत्र अपने अपने प्रकाश से निरतर समीक्षापथ को आलोकित करने लगे। अतएव रीतिकालीन आचार्यों में सैद्धातिक मौलिकता हो या न हो, उनका सबसे बड़ा

श्रेय यह है कि संक्रमणकाल मे भी इन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की चिंतनधारा को जीवित रखा।

विशेषतः रससिद्धात के क्षेत्र मे इनकी देन यह है कि इन्होंने रससिद्धात के अतर्भोग से मुक्त कर इसे प्रशस्त पथ पर प्रतिष्ठित किया। रससिद्धात के प्रथम आचार्य भरत ने इसे स्वतत्र रूप मे ही प्रवर्तित किया था, ध्वनिवाद का अंग बनाकर नहीं। सस्कृत के परवर्ती आचार्यों मे आनंदवर्द्धन से जगन्नाथ पर्यंत अधिकाश आचार्यों ने असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि के अतर्गत ही नौ या दस रसों की निरूपणा की। किंतु रीतिकालीन जिन आचार्यों के उद्धरण आगे दूसरे खंड में सकलित किए गए हैं, उनमें से अधिकाश ने ध्वनिमुक्त रस का ही निरूपण किया। केवल चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास और प्रतापसाहि ही ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि मे रसों को अतर्भुक्त किया। तथापि इन्होंने भी नायिकाभेदों के विस्तृत उल्लेख तथा शृंगार के रसराजत्व की प्रतिष्ठा के द्वारा व्यंजना से यही प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि रसवाद एक 'सर्वतत्रस्वतंत्र' सिद्धात है। इस प्रकार रीतिकालीन आचार्यों के हाथों रसवाद या शृंगारवाद को पुनः वही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो भरत और भोजराज के कृतित्वों द्वारा प्राप्त थी।

यह सच है कि कविशिक्षक होने के कारण तथा परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण रसस्वरूप, रसोपकरण और रसभेद मे मौलिकता प्रदर्शित करने का इन्हें न तो अवकाश था और न वैसी कोई गुंजायश ही रह गई थी फिर भी अपने अध्ययनक्रम में रीतिकालीन रसग्रंथों में जो यत्किंचित् मौलिकता उपलब्ध हुई है उन्हें क्रमशः प्रस्तुत कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। परंपरागत विषयों का पुनराख्यान तो अग्रिम उद्धरणों में स्पष्टतया उद्भासित है अतएव अपने वक्तव्य के सीमित क्षेत्र में उनकी चर्चा मैं अनावश्यक मानता हूँ।

६. रीतिकालीन रसविवेचना के विशिष्ट अंग

क– रसस्वरूप और अभिव्यक्ति

इस क्षेत्र में केशव की देन निःसदिग्ध है। केशव ने शृंगार को रसों का नायक माना और अन्य सभी रसों का इसमें अतर्निवेश किया। सभी शृंगार पर्यवसायी रसों के आश्रयालंबन और विषयालबन के रूप में हरि और राधा को स्वीकार किया। एतदर्थ प्रत्येक परपरागत शृंगार, हास्य आदि रस के साथ ब्रजराज हरि का संबध या आलबनत्व उन्हें सिद्ध करना पड़ा है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—वृषभानुकुमारी के साथ ब्रजराज कृष्ण का शृंगारी रूप, हास्य और प्रसन्नता का उनमे निवास होने के कारण हास्यालंबनत्व, माता यशोदा के द्वारा

बाँधे जाने पर उनका करुणामय रूप, केशी के प्रति क्रोध प्रकट करने पर रौद्ररसमय रूप, वत्सासुर की हत्या में उत्साह प्रदर्शन के क्षणों में वीररसमय रूप, दावानल-पान के प्रसंग में भयात्मकता, बकासुर के वक्षःस्थल का रुधिरपान करने के समय वीभत्समय रूप, विधाता की बुद्धि को अपनी लीलाओं के द्वारा विस्मय-विमुग्ध कर देने के कारण अद्भुतमयत्व और समस्त बाह्यवृत्तियों को अंतर्मुख कर स्थितप्रज्ञ की तरह शांत चित्त से विचारपरायण होने के क्षणों में शांतिमय रूप होने के कारण ब्रजराज नवरसमय हैं।[२७] यहाँ तक कि केशव ने नायक और नायिका की सहायिका उन्हीं सखियों (धाई, जनी, नाइन, नटी आदि) को माना है जो राधा और हरि की प्रेमसंबंधी बाधाओं को दूर करती हैं। सभी रसों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए केशव और अधिक सजग हैं जिससे राधा और हरि का आश्रयालंबनत्व किंवा विषयालंबनत्व छूटने न पाए। यही कारण है कि प्रत्येक रस के आप कम से कम दो उदाहरण देते चलते हैं—जैसे, 'राधिका जू भयानक रस' और 'श्रीकृष्ण को भयानक रस' आदि। निष्कर्ष यह कि केशव के रसस्वरूप में दो बातें नितांत स्पष्ट हैं—

१. स्थूलतः रस नौ हैं पर शृंगार रसों का नायक है और इसी में सभी रस अंतर्निविष्ट हैं।

२. सभी शृंगार पर्यवसायी रसों के आश्रयालंबन तथा विषयालंबन हरि और राधा हैं।

केशव की उपर्युक्त दोनों मान्यताओं पर क्रमशः संस्कृत के परंपरागत आचार्य भोजदेव तथा गौड़ीय वैष्णव आचार्य रूप गोस्वामी का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। भोजराज ने अहंकार को रसोद्भव का मूल कारण माना है। इस अहंकार को ही अभिमान और शृंगार कहा जाता है।[२८] भोज ने अहंकार का प्रयोग आत्मानुराग के अर्थ में किया है। इसी अर्थ में बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य को सभी सांसारिक पदार्थ, सभी मनुष्य किंवा उनके द्वारा व्यक्त शोक, क्रोध आदि विविध भाव आत्मसंतोष के लिये ही प्रिय होते हैं।[२९] भोज ने अहंकार की तीन स्थितियाँ भी बताई हैं और उसी के आधार पर रस की तीन कोटियाँ भी स्वीकृत की हैं। रस या अहंकार की प्रथम कोटि है रूढाहंकारता अर्थात् मनुष्य में अहंकार की अवस्थिति, रत्यादि भावों की परप्रकर्षता को रस नाम से निर्दिष्ट करना उसकी दूसरी कोटि (स्थायी भाव) है

२७. रसिकप्रिया, १।२।
२८. सरस्वती कंठाभरण, ५।१।
२९. बृहदारण्यकोपनिषद्, २।४।५।

तथा उसकी तीसरी कोटि है रति, हास आदि भावों की प्रेमरूप में परिणति। तृतीय कोटि में आकर ही वस्तुतः अहंकार शृंगार रस का रूप धारण करता है तथा शृंगार से ही हास्य, करुण आदि अन्य आठ रस उद्भूत होते हैं। अतएव भोज की दृष्टि में शृंगार ही मूल रस है। अपने दोनों ग्रंथों (सरस्वतीकंठाभरण और शृंगारप्रकाश) में शृंगार की मौलिकता का (केशव के शब्दों में नायकत्व का) उन्होंने स्पष्ट प्रतिपादन किया है।[३०] अतएव भोजदेव की दृष्टि मे स्पष्टतः शृंगार रसराज या रसनायक है। भोज की शृंगारप्रियता तो इतनी अधिक बढी हुई थी कि इन्होंने कवि के शृंगारी होने पर जगत् की रसमयता और उसके अशृंगारी होने पर जगत् की नीरसता का भी उल्लेख कर डाला।[३१]

भोज और केशव में मुख्य अतर यह है कि जहाँ भोज ने रसों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर शृंगार की रसराजता प्रतिपादित की है, वहाँ केशव ने विवेचना की तह मे गए बिना ही 'शृंगार को रसों का नायक' स्वीकार कर लिया है। इस अतर का कारण भी स्पष्ट है। प्रथम तो यह कि भोजदेव अपनी कारिकाओं की व्याख्या के लिये गद्यात्मक वृत्ति का भी आश्रय ग्रहण कर लेते हैं और द्वितीय यह कि भोज का युग भी विश्लेषण और विवेचन का युग था जो सुविधा केशव को अप्राप्त थी। साथ ही भोज के ग्रथ विद्वानों के लिये रचे गए थे। केशव का मात्र उद्देश्य इतना ही है कि सस्कृत काव्यशास्त्र के ज्ञानसंभार को भाषा-काव्य-रसिकों तथा कवियों के पास पहुँचा दें। यों समासतः इन्होंने भोजदेव के विचारों को ही ब्रजभाषा में प्रस्तुत कर दिया है।

केशवप्रतिपादित रसस्वरूप का दूसरा खंड है श्री कृष्ण और राधा का आलबनत्व। केशव की इस मान्यता पर स्पष्टतः गौड़ीय वैष्णव सप्रदाय के आचार्य रूप गोस्वामी के हरिभक्तिरसामृतसिंधु और उज्ज्वलनीलमणि नामक ग्रंथों का प्रभाव है। रूप गोस्वामी ने भक्तिरस की मौलिकता की उद्भावना की और उसी में शृंगार-हास्य आदि परपरागत नौ रसों को अंतर्भूत कर दिया। इन सभी रसों में मधुर रस को उन्होंने भक्तिरसराट् कहा है।[३२] केशव का रसनायक शृंगार भी इस मधुररस का ही प्रकारातर है। इसे केशव ने कविप्रिया में हरिरस भी कहा है। पुन. रूप गोस्वामी ने भक्ति रस के प्रत्येक भेद के लिये कृष्ण और उनकी वल्लभाओं को ही आलबन माना है।[३३] केशव ने भी कृष्ण

३०. शृंगारप्रकाश, १।३।

३१. सरस्वतीकंठाभरण, ५।३।

३२. उज्ज्वलनीलमणि, पृ० ४।

३३. वही पृ०, ५।

को आलम्बन माना है, पर वल्लभाओं में इन्होंने राधा को ही आलम्बन के रूप में गृहीत किया है। रूप गोस्वामी ने कोटि संख्यक वल्लभाओं की कल्पना तो की है, पर उनमें राधा और चन्द्रावली को ही श्रेष्ठ घोषित किया है। इन दोनों में भी राधा को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि वह महाभावस्वरूपा एवं गुणों से वरीयसी हैं। इस मान्यता का आधार रूप गोस्वामी ने तन्त्रशास्त्र को प्रतिपादित किया है जिसमें राधा को कृष्ण की ह्लादिनी महाशक्ति का रूपांतर माना गया है।[३४] आचार्य केशव ने राधा के आलम्बनत्व की इतनी सफाई तो नहीं दी पर आँख मूँद कर कृष्ण की वल्लभा राधा को आलम्बन स्वीकर कर लिया। तथापि इतनी सुयोजित व्यवस्था इन्होंने अवश्य की कि प्रत्येक रस के उदाहरण प्रस्तुत करते समय कृष्ण और राधा को भूले नहीं और क्रमशः दोनों के आलम्बनत्व के आधार पर 'कृष्णजू को अमुकरस और राधाजू को अमुक रस' कह कर पृथक्-पृथक् छंद रच डाले। केशव के रसनिरूपण की विशेषता यह है कि जिस रस-नायक शृंगार का अवांतरभेद आपने अन्य रसों को बनाया है, लक्षण और उदाहरण देते समय उन्हें दृष्टिपथ से ओझल नहीं होने दिया है। लक्षणों में कहीं कहीं त्रुटि भी आ गई है पर उदाहरण भलीभाँति दोनों पक्षों में सत्रटित हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि हास्य रस का उदाहरण परंपरागत हास्य-सामान्य में भी विनियुक्त है और रसनायक शृंगार (जो रूप गोस्वामी के मधुर रस का ही रूपांतर है) में भी। इसी प्रकार करुण, रौद्र, वीर आदि रसों के भी लक्षणों और उदाहरणों की स्थिति है।

इस प्रकार केशव का रस-स्वरूप-चिंतन सर्वथा मौलिक तो नहीं है किंतु प्रभाव भी संस्कृत काव्यशास्त्र के परंपरागत सामान्य ग्रंथों का नहीं है। भोज और रूप गोस्वामी जो परंपरागत लीक से हटकर विवेचन करने चले हैं, उन्हीं के विशिष्ट ग्रंथों का प्रभाव ग्रहण कर केशव ने कुछ विलक्षणता प्रदर्शित कर दिखाई। उन आचार्यों की तरह विस्तृत निरूपण और विश्लेषण तो नहीं किया पर समासतः कथनीय सब कुछ कह डाला। केशव की मौलिकता यहाँ है कि उन्होंने पहली बार रसशास्त्र के उक्त दो स्रोतों से दो भिन्न मान्यताओं को संग्रथित कर एक अभिनव रसस्वरूप को विनिर्मित किया। अतएव इसे हम निःसंकोचरूप से केशव की सूझ और मौलिक उन्मेष का निदर्शन मानने को प्रस्तुत हैं।

इसी प्रकार देव के काव्यरसायन में और दास के काव्यनिर्णय में रस-

३४. वही, पृ० ७३।

परिपाक का स्पष्टीकरण रूपक के माध्यम से किया गया है। इन दोनों का मूलाधार भी हमे ढूँढ़ने पर अभिनवगुप्त की अभिनवभारती मे प्राप्त हो जाता है। किंतु जितने अगों और उपागों को लेकर देव और दास ने रसनिष्पत्ति का साग रूपक बाँधा है, वैसा अभिनवगुप्त से सभव न हो सका था। अतएव उक्त दोनों आचार्यों के इस अश को भी हम मौलिक मानने के लिए बाध्य हैं। देव का कथन है कि पात्र (नायक, नायिका और सहृदय का हृदय क्षेत्र है अर्थात् इसका आधारस्थान है, सस्कार रूप से चित्त में रहनेवाला स्थायी भाव बीज है जो स्नेह के सिंचन से क्रमशः अकुरित, पुष्पित, और फलित होकर रसरूप में परिणत हो जाता है। तात्पर्य यह है कि रसरूपी अमरतरु (कल्पतरु) के खेत, बीज, अंकुर, सलिल, शाखा, दल, फल, फूल, आदि आठ अंग हैं जिनके अस्तित्व मे ही रसामृत प्रस्रवित होता है। इन अगों मे क्षेत्र (खेत) तो पात्र है, हृदयगत संस्कार बीज हैं, विधाता की कृपा से अकुर योग होता है, स्नेह सलिल का स्थानापन्न है, विभिन्न भाव शाखाएँ हैं, छद पत्र हैं, शब्दालकार और अर्थालकार फूल हैं तथा आमोद (रसानुभूतिजन्य आनद) ही फल है।[३५] विभाव, अनुभाव, सचारी आदि उपकरणों का रसपरिपाक मे स्थान निर्धारित करते हुए देव ने लिखा है कि स्थायी-भाव-रूप रसाकुर को विभाव उत्पन्न करते हैं, अनुभाव उसे अनुभव योग्य बनाता है अर्थात् उसे प्रकाशित करता है, सात्विक भाव उसे झलका देते हैं अर्थात् ये उसके विशेषक हैं तथा संचारी भाव बीच बीच में उभकते हैं अर्थात् ये उसके विलासक हैं।[३६] रस को आमोदस्वरूप और अलौकिक बताकर देव ने उसकी आनदमयता और ब्रह्मास्वाद-सहोदरता की ओर भी सकेत किया है। दास ने भी इसी तरह राजा, राज-पुत्र, राजधानी, राजसंपत्ति, विधाता आदि प्रतीकों के आधार पर रूपक के माध्यम से इस स्वरूप का स्पष्टीकरण किया है।[३७] रसलीन ने भी एक ऐसा ही सांग रूपक बाँधा है। इन्होंने सहृदयों के मन में रहने वाली वासना को बीज, स्थायीभाव को अकुर, परिस्थितिविशेष को उसे सींचने वाला जल, भ्रमर आदि को उद्दीपन तथा अनुकूल मनुष्यों (नायक-नायिका आदि) को विभाव, अनुभाव को तरु, व्यभिचारी भाव को क्षण क्षण में फूलने वाले फूल, इन सब के सहयोग से उत्पन्न रस को मकरद तथा सहृदयों और कवियों को जो अपने चित्त मे इसका आस्वाद

३५. शब्दरसायन, प्र० ३, पृ० २८।
३६. वही, प्र० ३, पृ० २६।
३७. रससारांश, ५४०।

करते हैं, मधुप कहा गया है।[३८] इस प्रकार रसस्वरूप-सबधी इन रूपकों की अभिनवगुप्तीय प्रभाव के बावजूद भी अभिनवता नि सदिग्ध है।

ख- विभाव : नायक-नायिका-भेद

रीति कालीन आचार्यों के मध्य कतिपय आचार्यों ने नायिकाओं और उनकी सखियों के नूतन वर्गीकरण में अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। यद्यपि उनके ये वर्गीकरण न तो अधिक उपादेय हैं और न अधिक युक्तिसगत ही, तथापि उन्होंने प्राचीन स्रोतों का आधार लिए बिना भी कुछ -एक नवीन उद्‌भावनाएँ कीं और कुछ नया कहने का प्रयास किया —इस दृष्टि से उनका अपना महत्व है। तोप ने शृंगार संबधी उद्‌दीपन के अतर्गत भानुमिश्र की तरह सखियों और दूतियों का निरूपण किया है। इस प्रसग मे इन्होंने दूतियों के कई मौलिक भेद प्रतिपादित किए हैं—पड़ोसिन, जनी, धाइ, चितेरी, रँगरेजिन, जड़ियारिन, चुरिहारिन, कोइरिन, नटिन, तमोलिन, धोबिन, हलवाइन, नाइनि आदि। रस-सिद्धात की दृष्टि से भले ही इनका कोई महत्व न हो, किंतु लोक जीवन के आधार पर ही इन भेदों को तोप ने गृहीत किया है। इसी प्रकार देव के रस-विलास में देश, प्रकृति, सत्व, नगर, ग्राम आदि के आधार पर नायिकाओं के अनेक नए वर्गों की उद्‌भावना की गई है। देश भेद के आधार पर मध्यप्रदेश-वधू, मगधदेशवधू, कौशलदेशवधू, उत्कलवधू आदि २६ भेद प्रतिपादित हुए हैं। प्रकृति के आधार पर कफ प्रकृति, वातप्रकृति, पित्त प्रकृति और सत्व के आधार पर देवसत्व, मानुषसत्व, गधर्वसत्व, यक्षसत्व—यहाँ तक कि खरसत्व, कपिसत्व, काकसत्व आदि अनेक भेद भी किए गए हैं। नगर और ग्राम के आधार पर नागरी और ग्राम्या तथा नागरी के अवातरभेदों मे जौहरिन, पटहारिन, सुनारिन, गधिन, तेलिन आदि और ग्राम्या के अंतर्गत पुरवासिनी, ग्रामिनी और वनवासिनी आदि भेद बताए गए हैं। इन सारे नायिकाभेदों का मूलस्रोत अनुपलब्ध है। अतएव इन्हें देव की मौलिक उद्‌भावना का ही परिचायक मानना चाहिए। ये सारे भेद उपहासास्पद से तो लगते हैं पर नायिकाभेद के इतिहास मे अवश्य एक नवीन अध्याय जोड़ते हैं। कुमारमणि द्वारा प्रस्तुत शठ नायक के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक दो भेद भी सर्वथा मौलिक हैं। पद्‌मिनी, चित्रिणी, शखिनी और हस्तिनी नामक चार नायिकाभेद सस्कृत के कामशास्त्रीय ग्रंथों में तो प्रतिपादित हुए थे पर काव्यशास्त्रीय ग्रथों मे प्रायः इनका निवेश अभी तक नहीं हुआ था। रीतिकालीन आचार्य सोमनाथ ने पहली बार

३८. रसप्रबोध, ६-१२।

इनका समावेश अपने 'रसपीयूषनिधि' नामक ग्रंथ में किया और तदनंतर इन भेदों का निरूपण काव्यशास्त्र में प्रचलित हो गया। अतएव इसे हम सोमनाथ की मौलिक उद्भावना तो न स्वीकार करेंगे किंतु काव्यशास्त्र को उनका यह महत्वपूर्ण योगदान अवश्य माना जा सकता है।

ग– अनुभाव, सात्विक भाव और संचारी भाव

केशव ने अपनी रसिकप्रिया में परंपरागत ३३ संचारी भावों के अतिरिक्त दो नवीन भेदो की उद्भावना की है—विवाद और आधि। ये नए दो भेद विवेचनीय हैं। आधि मानसिक व्यथा को कहते हैं। व्याधि (शारीरिक व्यथा) तो एक परंपरागत संचारी भाव पूर्वतः था ही, अतएव मनोव्यथावाची आधि को व्यभिचारी मानना अधिक असगत नहीं है। यह भावक्षेत्र के अधिक समीप भी है। फिर विवाद को व्यभिचारी भाव मानने में कौन सी तुक है? प्रायः तर्क को व्यभिचारी रूप में प्रतिष्ठित देखकर केशव ने विवाद को भी इस वर्ग में संमिलित कर लिया। यदि केशव का आधार यही रहा है तो स्पष्ट है कि इन्होंने तर्क को अत्यधिक स्थूल अर्थ में गृहीत किया है। सच्ची बात तो यह है कि तर्क एक मनोदशा का नाम है।[३६] विवाद की स्थिति वैसी नहीं है। यदि केशव ने अपने नवोद्भावित व्यभिचारी भावों के लक्षण और उदाहरण भी दे दिए होते तो इन्हें समझने मे अपेक्षाकृत अधिक आसानी होती। पर वैसा वे न कर सके। अतएव विवाद आपाततः एक असंगत व्मभिचारी भाव प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त केशव ने कई सचारी भावों के नाम भी परिवर्तित कर डाले हैं - यथा, औत्सुक्य, सुप्त, विवोध, वितर्क, अमर्ष और असूया के स्थान पर क्रमशः उत्कठा, स्वप्न, प्रबोध, तर्क, कोह और निंदा। जहाँतक पर्यायवाची शब्दों को रखने का प्रश्न है, केशव को दोषभागी नहीं माना जा सकता है। यह एक पूर्व-प्रचलित परपरा है। भरत के सुप्त को विश्वनाथ ने भी स्वप्न और धनंजय ने भी वितर्क को तर्क कह दिया है। अमर्ष के स्थान पर कोह का प्रयोग भी कुछ पूर्व से ही प्रचलित था। कोह का क्रोध के अर्थ मे प्रयोग रामचरितमानस में भी मिलता है। असूया के स्थान पर निंदा का प्रयोग भी प्रायः सोच समझकर किया गया है। एक तो दोनों मे अर्थसाम्य भी है—'असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्'। निंदा का प्रयोग जुगुप्सा नामक स्थायीभाव के स्थान पर केशव को करना था। अतएव उसका निवेश व्यभिचारी भावों की तालिका में कर देना उन्हे आवश्यक प्रतीत हुआ। इसके पूर्व मम्मट ने निर्वेद नामक व्यभिचारी भाव को शात रस का

३६. साहित्यदर्पण, ३।१७१।

स्थायीभाव बनाया था अतएव केशव ने भी निंदा नामक व्यभिचारी भाव को लेकर वीभत्स रस का स्थायी भाव बनाना चाहा। फलतः व्यभिचारियों की तालिका में पहले इसका निवेश कर दिया। इस प्रकार केशव द्वारा परिवर्तित नामों का समाधान उपलब्ध हो जाता है। तथापि यह एक प्रकार की नवीनता ही मानी जायगी।

मतिराम, पद्माकर और बेनी प्रवीन द्वारा प्रस्तुत 'जृंभ' नामक सात्विक-भाव को तथा देव द्वारा प्रस्तुत 'छल' नामक संचारी भाव को अभी हाल तक कई आलोचक उनकी नवोद्भावना का परिणाम मानते रहे हैं, पर इनका आधार-स्रोत भानुदत्त की रसतरंगिणी होने के कारण इन्हें मौलिक नहीं माना जा सकता है। ग्वाल कवि ने संचारी भावों और सात्विक भावों के क्षेत्र में अनेक नई बातें कही हैं। इन्होंने सचारियों के दो वर्ग माने हैं—तनज संचारी और मनज सचारी। आठ प्रकार के स्तभादि सात्विक भावों को इन्होंने तनज संचारी कहा है, क्योंकि इनका उद्भव तन से होता है पर इनके सहायक भी मनज सचारियों की तरह मन ही हैं। अन्य निर्वेदादि ३३ सचारी भावों को ग्वाल ने मनज सचारी माना है, क्योंकि इनका उद्भव मन से ही होता है और तन इनका माध्यम नहीं है। सात्विक भावों के वर्गीकरण में ग्वाल ने नवीनता प्रदर्शित की है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वचा इन पाँच इद्रियों के योग से प्रत्येक स्तंभादि तनज सचारी के पाँच पाँच भेद कर दिए हैं। इस प्रकार ग्वाल की दृष्टि में सात्विक भाव मात्र आठ ही नहीं, प्रत्युत ४० प्रकार के (८ × ५ = ४०) होते हैं। ग्वाल के सात्विक-भाव-विवेचन में कई बातें चिंत्य हैं। प्रथम तो यह कि सात्विक भावों को अनुभावों के अतर्गत रखना चाहिए था, सचारी भावों के अतर्गत नहीं। चूँकि स्तभादि सात्विक भावों का प्रकाशन शरीर के माध्यम से होता है, अतएव उनमे स्थूलता भी आ जाती है और उन्हें आसानी से अनुभावों की कोटि मे लाया जा सकता है। मन की सहायता प्राप्त होने के कारण इन्हे सचारी भाव कहना सर्वथा असगत है। यों तो मन की सहायता से ही अनुभव भी शारीरिक चेष्टाओं के रूप में व्यक्त होते हैं और तब इन्हें भी क्यों नहीं तनज सचारी माना जाय। थोड़ी देर के लिये सात्विक भावों को तनज सचारी मान भी लिया जाय तो प्रश्न उठता है कि इनके चालीस भेद किए जाँय या नहीं? यदि पाँच ज्ञानेंद्रियों के योग से प्राप्त होने के कारण प्रत्येक सात्विक भाव के पाँच भेद माने जाँय तो फिर क्यों न कर्मेंद्रियों के आधार पर भी इनके भेद हों और तब इनकी सख्या ४० ही नहीं, अपितु ८० या उससे भी अधिक हो सकती है (क्योंकि अन्य अगों के आधार पर भी वर्गीकरण सभव है)। सच पूछिए तो यह बात समझ मे नहीं आती कि स्तंभ, स्वेद आदि उद्भव में श्रोत्र-चक्षुपादि पाच ज्ञानेंद्रियाँ किस

प्रकार योगदान करती हैं ? और यदि करती हैं तो अन्य अगों को भी क्यों नहीं योगदायी माना जाय ? अतएव ग्वाल के सात्विक विवेचन में नवीनता का व्यामोह तो है, तत्वाभिनिवेशी दृष्टिकोण नहीं। ग्वाल ने सात्विक भावों के तो आठ या चालीस भेद माने पर अंत में चलकर जृ भा नामक नवम भेद पर भी प्रकाश डाला।[४०] परोक्ष रूप से जृ भा को भी आपने स्वीकार कर लिया है। अतएव इसे प्रतिपादन की अव्यवस्था ही कहना चाहिए। ग्वाल के संचारी-भावनिरूपण की एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने प्रत्येक सचारी भाव के प्रकाशक अनुभावों का भी उल्लेख किया है। इसका आधार तो भानुमिश्र की रसतरगिणी है किंतु यह एक उलझन में डालनेवाली चीज है। इसका कारण यह कि स्थायी भावों को ही विभाव, अनुभाव और संचारी अपने सयोग से रसरूप में परिणत करते हैं, संचारी भावों को नहीं। ऐसी स्थिति में सचारी भावों को उक्त उपकरणों की कोई आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है ? इसके अतिरिक्त, भानुदत्त का अनुसरण करते हुए ग्वाल ने भी छल नामक चौंतीसवें संचारी का उल्लेख किया है और इसके लक्षण और अनुभाव भी इन्होंने बताए हैं। यहाँ भी कोई नवीनता नहीं है।

रसिकविहारी ने प्राचीन अवहित्था नामक संचारी भाव के स्थान पर 'आकृतिगोपन' शब्द का प्रयोग किया है। लक्षण मे कोई मौलिकता नहीं है पर नामकरण की मौलिकता निःसंदिग्ध है।

घ–स्थायी भाव

रीतिकाव्य में स्थायीभावों का निरूपण तो परंपरागत है, किंतु वीभत्स रस के प्रसंग में थोड़ी बहुत नवीनता दृष्टिगोचर होती है। देव ने वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा को स्वीकार तो किया किंतु उसके दो भेद कर डाले—घिन और निंदा। इनमें से प्रथम जुगुप्सा (घिन) तो स्थूल है जो घृणास्पद वस्तुओं को देखने सुनने पर उत्पन्न होती है किंतु द्वितीय जुगुप्सा (निंदा) सूक्ष्म है जो नीच कर्म करने और सुनने पर उत्पन्न होती है।[४१] डा० नगेंद्र ने निंदात्मक जुगुप्सा को ग्लानि माना है तथा आत्मग्लानि को करुण अथवा शात रस के अधिक निकट एव दूसरों के प्रति ग्लानि को क्रोध के निकट प्रतिपादित किया है।[४२] मेरी धारणा है कि भावों का कोई भी प्रभेद शारीरिक नहीं हो सकता (सात्विक भावों को छोड़ कर), वे सभी मानसिक ही हैं। आत्मग्लानि हो या परग्लानि—

४०. रसरंग। १। ६२–६३।

४१. शब्दरसायन, पृ० ३६।

४२. देव और उनकी कविता, पृ० १३४–३५।

होती है उससे घृणा ही। वह घृणा चाहे शोक पर्यवसायी हो या क्रोध पर्यवसायी किंतु है वह मूलतः घृणा ही। यों तो तथाकथित शारीरिक घृणा भी परिणाम में खेद, शोक, क्रोध आदि भावों की जनक होगी ही। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति ने सडक पर मल मूत्र जैसे घृणास्पद पदार्थ फेंक दिए हैं और उस सड़क से गुजरने वाले पथिकों को घृणा हो रही है। क्या उसकी यह घृणा घृणित वस्तु फेंकने वालों पर क्रोध के रूप मे परिणत नहीं होगी? अतएव देव प्रतिपादित घिन और निंदा दोनों जुगुप्सा के ही रूप हैं और वे वीभत्स के स्थायी भाव बनने योग्य हैं। देव के पूर्ववर्ती केशव, तोष और परवर्ती जनराज ने जुगुप्सा को हटाकर निंदा शब्द का प्रयोग किया था। परपरागत संस्कृत काव्यशास्त्र में तो जुगुप्सा शब्द का ही प्रचलन था। अतएव दोनों से प्रभाव ग्रहण कर जुगुप्सा को घृणा और निंदा नामक दो भेदों में देव ने बाँट दिया है। वस्तुतः यह वर्गीकरण अनावश्यक है क्योंकि इस प्रकार अन्य स्थायी भावों के भी प्रभेद सभव हो सकते हैं। तथापि समग्रतः देव का स्थायी भाव निरूपण तर्कसगत एव समीचीन है।

रीतिकालीन अन्य आचार्यों में स्थायी भाव के संबध में न कोई मौलिक चिंतना है और न तदर्थ कोई प्रयास। परपरागत बातों को ब्रजभाषा मे दुहरा देने मे ही उनके आचार्यत्व का पर्यवसान है।

ङ—रसभेद

इस क्षेत्र में रीतिकालीन आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान है। केशव, तोष और रसलीन ने नौ रसों मे प्रत्येक के सामान्यतः दो भेद माने हैं—प्रच्छन्न और प्रकाश। हमें अभी तक सस्कृत काव्यशास्त्र के किसी भी ग्रंथ में ये भेद उपलब्ध नहीं हुए है। रीतिकालीन लौकिक अलौकिक, स्वनिष्ठ परनिष्ठ, अभिमुख विमुख, परमुख आदि रसभेदों का स्रोत तो भानुदत्त की रसतरगिणी है किंतु प्रच्छन्न और प्रकाश नामक रसभेद निश्चय ही इनकी मौलिक उद्भावना के परिणाम हैं। तोष और रसलीन ने भूत, भविष्य (भविष्यत्) और वर्तमान नामक मौलिक रसभेद भी प्रतिपादित किए हैं। इनके अतिरिक्त तोष ने शृंगार रस के संयोग और वियोग नामक परपरागत भेदों के अलावा सामान्य और मिश्रित नामक दो नवीन भेदों की भी उद्भावना की है। सयोग के भी इन्होंने स्थान और परिस्थिति के अनुसार कई नवीन भेद गढ लिए हैं—धाई के घर मिलन, सूने सदन को मिलन, जलविहार को मिलन आदि। यद्यपि सस्कृत के आचार्यों ने ऐसे भेदों की समस्या उठा कर भी इन्हें स्थान नहीं दिया था पर तोष ने सर्वप्रथम इन्हे काव्यशास्त्र में स्थान देकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। रसभेदों की दिशा में देव ने भी कुछ नवीनता प्रदर्शित की है। करुण रस के इन्होंने

पहली बार पाँच भेद किए—करुण, अतिकरुण, महाकरुण, लघुकरुण और सुख-करुण। इनमे से चार भेद तो करुणा की मात्रा के आधार पर किए गए हैं और अंतिम सुखकरुण में सुख और दुःख के समिश्रण को प्रतिपादित किया गया है। देव ने शात रस के भी दो नवीन भेदों की उद्भावना की—भक्तिमूलक शात और शुद्ध शात। भक्तिमूलक शात को भी भक्तिभेद के आधार पर वर्गीकृत कर प्रेमभक्ति, शुद्धभक्ति और शुद्ध प्रेम नामक तीन भेदों को स्वीकार किया गया है। शुद्ध शात को इन्होंने वैराग्यमूलक माना है। यद्यपि इस वर्गीकरण का कोई विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि भक्तिरस और शातरस दो पृथक् परपरागत रस हैं। एक का स्थायी भाव देवभक्ति है और दूसरे का है निर्वेद यानी वैराग्य। इन दोनों को साथ मिलाकर ही देव ने शात रस को विभाजित किया है। फिर भी प्रतिपादन का यह ढग अभी तक अछूता था, अतएव इसे हम देव के रस-निरूपण का मौलिक अश मान लेते हैं।

भिखारीदास के काव्यनिर्णय मे भी शृगार रस के नवीन वर्गीकरण उपलब्ध होते हैं। इन्होंने परपरागत सयोग और वियोग नामक द्विविध शृगार को सम और मिश्रित नामक दो नूतन भेदों में बाँट दिया है। सयोग के दो अन्य भेद भी बताए हैं—सामान्य शृगार और सयोग शृंगार। इन्होंने विहारवर्णन को सयोग शृंगार कहा है। इस विहारात्मक सयोग को भी नायकजन्य शृंगार और नायिकाजन्य शृगार नामक दो भेदों में विभक्त कर लिया गया है। करुण विप्रलभ के स्वरूप में भी दास ने नवीनता प्रदर्शित की है जहाँ सस्कृत काव्य-शास्त्र में नायक और नायिका में से किसी एक के स्वर्गप्रयाण और उसके लौट आने की सभावना से उत्पन्न खेद को करुण विप्रलभ स्वीकार किया गया है वहाँ दास ने निराशाजन्य ग्लानि से उद्भूत मरणेच्छा मे करुण विप्रलंभ की स्थिति प्रतिपादित की है।

रसलीन ने पहली बार रसों की उत्पत्ति के तीन कारण माने हैं—दर्शन, श्रवण और स्मरण। इन्होंने लिखा है—

> सो रस उपजत तीन विधि कविजन कहत बखान।
> कहुँ दरसन, कहुँ श्रवन, कहुँ सुमिरन तें परमान॥
>
> —रसप्रबोध, ३८

मेरी धारणा है कि परवर्ती काल में पं० रामचंद्र शुक्ल के 'रसात्मक बोध के विविध रूप' शीर्षक निबंध मे प्रतिपादित प्रत्यक्ष रूपविधान, स्मृति रूपविधान और कल्पित रूपविधान नामक रसानुभूति की त्रिविध कोटियों के ऊपर रसलीन की मान्यता का स्पष्ट प्रभाव है। रूपसाहि ने वियोग शृंगार के न तो मम्मटानुसार

पाँच भेद किए और न विश्वनाथ के अनुसार चार भेद, प्रत्युत स्वेच्छा से आठ भेद कर डाले—प्रिय का देशांतर गमन, गुरुशासन, अभिलाष, शाप, ईर्ष्या; दैवयोग, समय और उत्पात से उत्पन्न वियोग। इसी प्रकार उजियारे ने भी वियोग शृंगार के सात भेद प्रस्तुत किए हैं—गुरुनिदेश, अभिलाष, मान, शाप, प्रवास, समय और शत्रु से उत्पन्न। वियोग शृंगार के उपर्युक्त आठ या सात भेदों में कुछ तो प्रचीन हैं और कुछ रूपसाहि तथा उजियारे की नवोद्भावना की उपज हैं। शिवनाथ ने अनुकूल और प्रतिकूल रस के मिलन को 'दुसंधी रस' के नाम से अभिहित किया है। यद्यपि इसे एक रसदोष ही मानना चाहिए था, पर इन्होंने इसे एक अभिनव रसभेद के रूप में ही प्रतिपादित किया है। फलतः त्रुटिपूर्ण होते हुए भी यह शिवनाथ की नवीनता का द्योतक तो अवश्य ही माना जायगा।

च–रसदोष

रसदोषों के निरूपण में केशव, देव और जनराज इन तीनों आचार्यों ने परंपरा की अपेक्षा नवीनता लाने का प्रयास किया है। केशव ने परपरागत दस या ग्यारह दोषों को गृहीत नहीं किया है। इनके स्थान पर इन्होंने पाच अनरस या रसविरोधी दोषों का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं—प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसधान और पात्रादुष्ट। केशव प्रतिपादित ये पाच दोष (अनरस) आपाततः तो नवीन प्रतीत होते हैं किंतु ध्यान से देखने पर यह सिद्ध हो जाता है कि ये परंपरागत दोषों के ही नए नाम हैं। उनका क्रमिक विवरण प्रस्तुत है—

१ प्रत्यनीक—केशव के अनुसार शृंगार में वीभत्स के, वीर में भय के और करुणा में रौद्र के मिश्रण होने पर प्रत्यनीक नामक अनरस (रसविरोधी दोष) होता है।[४३] इसे हम ममटोक्त 'प्रतिकूल विभावादिग्रह' नामक रसदोष में भलीभाँति अंतर्भुक्त कर ले सकते हैं। शृंगार और वीभत्स, वीर और भयानक तथा करुण और रौद्र परस्पर प्रतिकूल तथा विरोधी रस हैं। इन विरोधी रसों का साथ वर्णन किए जाने पर स्वभावतः इनके उपादानभूत विभावादिकों का भी संमिलित वर्णन होगा ही। प्रतिकूल विभावादिकों के वर्णन में मम्मट ने रसदोष माना है और उसी को केशव ने 'प्रत्यनीक' नामक अनरस कहा है। फलतः केशवोक्त प्रत्यनीक में अभिधान के अलावा कोई विशेष नवीनता नहीं है।

२. नीरस—केशव की दृष्टि में वहाँ नीरस नामक अनरस होता है जहाँ नायक

४३. रसिकप्रिया। ६।२।

और नायिका एक दूसरे से लिपटे तो रहते हैं किंतु कपट का आचरण करते हैं।[४४] तात्पर्य यह कि उन दोनों मे शारीरिक मिलन तो होता है पर हार्दिक मिलन नहीं। इसे परपरागत शब्द में 'रसाभास' कहा जा सकता है। प्रेमी प्रेमिका के शृंगारवर्णन में शरीर और हृदय दोनों का मिलन वाछित होता है। वियोग शृंगार में शरीर का मिलना तो नहीं रहता है पर हृदय की रागात्मकता और अधिक गाढी रहती है। मनोगत राग के अभाव मे शृंगार तो नहीं पर शृगार-रसाभास का आस्वाद होता है। रस की यह एक हीन कोटि की स्थिति है। इसे ही केशव ने 'नीरस' नामक रसदोष कहा है।

३. **विरस**—केशव के अनुसार शोक और भोग के अर्थात् करुण और शृगार के मिलित वर्णन में 'विरस' अनरस होता है।[४५] तत्वतः यह प्रत्यनीक से सर्वथा अभिन्न है। केशव ने दो विरोधी रसों के मिश्रित वर्णन को प्रत्यनीक अनरस कहा है। करुण और शृगार भी विरोधी रस ही हैं अतएव इसे भी प्रत्यनीक मे ही समाविष्ट कर लेना चाहिए था। फलतः मम्मटोक्त 'प्रतिकूलविभावादिग्रह' नामक रसदोष में 'विरस' भी प्रत्यनीक की भाँति स्थान पा लेगा।

४. **दुःसंधान**—नायक और नायिका मे एक की अनुकूलता और दूसरे की प्रतिकूलता रहने पर दुःसाधन या दुसधान नामक अनरस होता है।[४६] सच पूछिए तो यह भी मम्मटोक्त रसाभास से अपृथक् ही है।

५. **पात्रादुष्ट**—विना समझे बूझे अपने विचार को पुष्ट करने के लिये विशेषणों को बैठा देने पर पात्रादुष्ट नामक अनरस होता है। इसे हम मम्मट प्रतिपादित 'अपुष्टार्थ' में अतर्भुक्त कर ले सकते हैं। जिन शब्दों के अनुक्त रहने पर भी प्रतिपाद्य अर्थ में किसी तरह की बाधा नहीं होती है, उन्हे ही मम्मट ने अपुष्टार्थ दोष से ग्रस्त स्वीकार किया है। अतएव केशवोक्त पात्रादुष्ट में और मम्मटोक्त अपुष्टार्थ दोष में तत्वतः कोई अंतर नहीं है। यह ठीक है कि अपुष्टार्थ एक अर्थदोष है और पात्रादुष्ट एक रसदोष। चूँकि रस का आश्रय वाच्यार्थ ही है, अतएव अर्थदोष को भी मम्मट ने परोक्ष या परपराप्राप्त रसदोष ही घोषित किया है—

४४. वही, १६।४।

४५. वही। १६।६।

४६. रसिकप्रिया। १६।८।

मुख्यार्थहतिर्दोषः रसश्च मुख्यः तदाश्रयाद्वाच्यः।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्याः तेन तेष्वपि सः ॥

—काव्यप्रकाश, ७।४६ और वृत्ति।

फलतः अपुष्टार्थ में पात्रादुष्ट की गतार्थता न तो तर्करहित ही है और न अनुचित ही। इस प्रकार केशव के सभी रसदोषो का परपरागत दोषों मे अतर्निवेश हो जाता है।

देव ने भी शब्दरसायन मे कतिपय नवीन रसदोषो का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं-सरस, नीरस, समुख, विमुख, स्वनिष्ठ, परनिष्ठ भीत, अभीत, उदास और उचित। ये परपरागत रसदोष नहीं हैं। सस्कृत काव्यशास्त्र के किसी भी सिद्धांत ग्रथ में इन दोषो का प्रतिपादन नहीं हुआ है। इनके लक्षण भी देव ने नहीं दिए हैं। केवल उदाहरणो के आधार पर इन दोषो को उन्हो ने अवगत कराया है। इनमे से समुख, विमुख, स्वनिष्ठ और परनिष्ठ, इन चार भेदों को भानुमिश्र ने रसभेद रूप मे स्वीकृत किया है।[४७] विमुख रस को तो किसी तरह दोष माना भी जा सकता है क्योंकि इसमे भाव, विभाव और अनुभाव की प्रतीति कष्टपूर्वक होती है, पर समुख, स्वनिष्ठ और परनिष्ठ रसों को रसदोष स्वीकार करना नितात असगत है। एकागी प्रेम को देव ने 'उदास' कहा है। इसे रसाभास के अतर्गत डाला जा सकता है। नीरस के भी कई भेद किए गए हैं—देश, काल, वर्ण, विधि, यात्रा, सधि, रस और भाव के विरोधानुसार आठ भेद वर्णित हैं। 'नीरस' के इन सारे भेदों मे से कतिपय को (देश और काल को) मम्मट-विश्वनाथ-समत प्रकृतिविपर्यय दोष के अदर डाला जा सकता है। वर्णमूलक नीरस को श्रुतिकटु दोप के अतर्गत, विधिमूलक को विध्ययुक्त के अतर्गत, सधिमूलक को भावसधि के अंतर्गत तथा रस और भावमूलक को रसविरोध के अतर्गत समाविष्ट कर लिया जा सकता है। शब्ददोप और वाक्यदोष भी मम्मट के अनुसार परोक्षरूप से रस को अपकर्ष पहुँचाते ही हैं। अतएव इन्हें रसदोष मानने में कोई क्षति भी नहीं है। अनौचित्य के आधार पर उचित नामक रसदोष की कल्पना की गई है। अनौचित्य तो सभी रसदोषों का मूल कारण है, ऐसा आनदवर्द्धन एवं मम्मट ने भी स्वीकार किया है। सरस, भीत और अभीत नामक रसदोप तो नितांत अस्पष्ट हैं और इन्हें हम परपरागत दोषों मे अंतर्भुक्त भी नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव का रसदोप निरूपण मौलिक होते हुए भी असंगत, शिथिल एव अस्पष्ट है। तथापि इनकी नवीनता में सदेह नहीं किया जा सकता है।

४७. रसतरंगिणी, तरंग ८, पृ० १८१।

जनराज ने मम्मटोक्त दस रसदोषों के अतिरिक्त दो अन्य रसदोष भी माने हैं। 'विभाव अनुभाव अकेलो' और 'रसविरुद्ध'। फलतः जनराज के रस-दोषों की सख्या बारह तक पहुँच जाती है। यद्यपि जनराज लिखित कवितारस-विनोद की एक हस्तलिखित प्रति में मैंने दोषों की सख्या १६ पाई है। वस्तुतः एक प्रकार के दोष को अशतः विभक्त कर देने के कारण ही संख्या १६ तक पहुँच गई है। उदाहरणार्थ रस, सचारी और स्थायी की स्वशब्दवाच्यता को एक दोष न मानकर तीन दोष मान लिए हैं और विभावानुभाव की कष्टप्रतीति को दो। अतएव सख्या १६ हो जाती है, अन्यथा जनराज प्रतिपादित रसदोष यथार्थतः बारह ही हैं। मम्मट या विश्वनाथ की अपेक्षा जनराज की विशेषता यह है कि इन्होंने प्रत्येक रसदोष का पृथक् पृथक् लक्षण भी दिया है और उसे 'लक्षणनामप्रकाश' समझकर छोड़ा नहीं है। यह प्रभाव वस्तुतः भिखारीदास का है, जो जनराज के पूर्ववर्ती आचार्य थे। जनराज के अनुसार कतिपय दोषों के लक्षण इस प्रकार हैं—

सचारी को नाम (इसे इन्होंने साक्षात् रसदोष कहा है)—

जिहा संचारी भाव को नाम प्रगट ही होय।
ते साक्षात् दूषन सही, बर्नत है कवि लोई॥

—कवितारसविनोद, ६।१२६

रस को नाम—

कहत रसहि वाच्य सौ जिहाँ।
रसहि वाच्यदूषन है तिहाँ

—वही, ६।१२८

थाई भाव को नाम—

थाई कहियत परगट होय।
स्थाई दूषन जानौ सोय॥

—वही, ६।१२६

विभाव की प्रतीति कष्ट सों—

जित विभाव की कष्ट सों होत प्रतीत सुजान।
दूषन कष्ट विभाव सों कविजन करत वषान॥

—वही, ६।१३१

अनुभाव की प्रतीति कष्ट सों—

जिहाँ अनुभाव प्रतीत जो महाकष्ट सों होय।
ते कष्ट अनुभाव है दूषन-दूषन जोय॥

—वही, ६।१३३

प्रतिकूल विभाव—

ह्वै विभाव औरे जहाँ औरे भाव उसूल।
रसदूषन ठहराव में सो विभाव प्रतिकूल॥

—वही, ६।१३६

दीपति पुन पुन—

है रस प्रथमै सी मिटि जाई।
बहुरि आय वैही दरसाई॥
दोष सु दीपति पुनि पुनि जानो।
रस वरनन मै चाहि न आनो॥

—वही, ६।१३८

इसी प्रकार अकाडप्रथन, रसच्छेद (अकाडच्छेद), अंगीविस्तार, अंगीविस्मृति, प्रकृतिविवर्जित, समयविरुद्ध, देशविरुद्ध, अनंगस्याभिधान, अमतनाम, रसविरुद्ध रस दोषों के लक्षण भी आपने दिए हैं। 'एक लो विभाव अनुभाव', जो एक नवीन रसदूषन है, का लक्षण इन्होंने नहीं दिया है। केवल इसके दो उदाहरण ही दिए हैं। रसानुभूति सर्वदा समूहालबनात्मक होती है, अतएव केवल विभाव या अनुभाव रसनिष्पत्ति कराने मे अक्षम है। यदि कोई असाधारण विभाव या अनुभाव हो तो बात दूसरी है। प्रकृति विपर्यय नामक रसदोष का लक्षण भी परंपरा सम्मत नहीं है। जनराज ने इसका शाब्दिक अर्थ ही गृहीत किया है अर्थात् प्राकृतिक विधानों की विवर्जना कर जो जोग घटित होते हैं वहीं यह दोष होता है। रसविरुद्ध कोई नवोद्‌भावित रसदोष नहीं है। मम्मट, विश्वनाथ तथा अन्य परपरागत आचार्यों ने मित्ररस और विरोधीरस का उल्लेख किया है। उसी को उठाकर जनराज ने रसदोषों की तालिका मे समाविष्ट कर लिया है और रसविरुद्ध नामक एक अतिरिक्त रसदोप की कल्पना कर ली है। यों मम्मट प्रभृति आचार्य भी विरोधी रसों के वर्णन मे दोप मानते ही है। आशिक त्रुटियों के बावजूद भी जनराज का रसदोष निरूपण समीचीन ही कहा जायगा।

इस प्रकार रीतिकालीन आचार्यों में कुछ एक आचार्य ऐसे हैं जिन्होंने रस-दोषों के निरूपण प्रसंग में थोड़ी बहुत नवीनता प्रदर्शित की है। शेप आचार्य तो परंपरा की लीक पर ही चलते रहे और उन्हीं को अपने शब्दों मे दुहराते रहे।

७. सर्वेक्षण

रीतिकालीन रसधारा की पूर्वपीठिका संस्कृत रसशास्त्र में निहित है। अतएव उसका सक्षिप्त सर्वेक्षण भी इस प्रसग मे अनावश्यक न होगा। कालखंड की दृष्टि से सस्कृत रसशास्त्र के दो भाग हैं—ध्वनिपूर्वकालीन और ध्वन्युत्तरकालीन।

दोनों भागों में रससिद्धात की भिन्न भिन्न स्थितियाँ रही हैं। ध्वनिपूर्व काल में भी रससिद्धात की दो धाराएँ रही हैं। प्रथम धारा वह है जब भारत ने मात्र दृश्य काव्य में अभिनय की दृष्टि से रसतत्व को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया था। द्वितीय धारा के अंतर्गत भरत के बाद अलकारादि सप्रदायों का उदय हुआ और रसतत्व को श्रव्य काव्य में भी स्वीकृति मिली। यह स्वीकृति उसे गौण रूप में मिली, यानी रस को कभी अलंकार का अवातरभेद माना गया—कभी रीति का और कभी गुण का। ध्वन्युत्तर काल में भी मान्यता और महत्व की दृष्टि से दो धाराएँ मिलती हैं—कभी तो रसध्वनि के रूप में असलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि के अंतर्गत इसका निरूपण किया गया और कभी इसे स्वतत्र अस्तित्व प्रदान किया गया। असलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि के रूप में भी दो तरीकों से रसविवेचन किया गया है। आनदवर्द्धन और उनके आनुयापी मम्मट ने ध्वनि के अतर्गत ही रस-विवेचन किया पर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रस को असंलक्ष्यक्रमव्यग्य ध्वनि मानकर भी पृथक् परिच्छेद मे रसविवेचन किया। परिणामतः विश्वनाथ के माध्यम से रस ध्वन्यगभूत होकर भी अपेक्षाकृत अधिक स्वातत्र्य और प्रशस्ति का भागी बन सका। काव्य की रसात्मकता चरितार्थ हुई। ध्वन्युत्तर काल की दूसरी धारा में रस को सर्वतत्रस्वतत्र रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। भानुदत्त की रसतरंगिणी मे इसकी परिणति दृष्टिगोचर होती है। सच पूछिए तो भरत के रसवाद की जो प्रशस्त धारा कालक्रम में विचार वैविध्य के अवरोध से अवरुद्ध हो गई थी, भानुदत्त के भगीरथ प्रयास से पुनः तरंगायित हो गई।

रस के उपकरणों को लेकर सस्कृत काव्यशास्त्र में अत्यल्प हेर फेर हुए हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र में जिन उपादानों का निर्धारण कर दिया था, जगन्नाथ और भानुदत्त के युग तक प्रायः शब्दभेद से उन्हीं का पुनराख्यान अथवा विवेचन विश्लेषण होता रहा। केवल आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक नायिकाओं के भेदों को लेकर अनेक परिवर्तन परिवर्द्धन होते रहे। सस्कृत रसशास्त्र में आचार्यों के मध्य दो विषयों को लेकर अधिक विचारभेद पाए जाते हैं। रसास्वाद की प्रक्रिया और रसभेद, ये दोनों विषय ही उनके विवाद के मुख्य केंद्रविंदु रहे हैं। रसनिष्पत्ति को लेकर उत्पत्तिवाद, अनुमानवाद, भोगवाद, अभिव्यक्तिवाद और दोषवाद प्रभृति सिद्धातों की अवतारणा हुई। इस प्रक्रम में दर्शनशास्त्रीय अनेक विचारों के संभार से रसशास्त्र को पूर्ण गंभीरता प्रदान की गई। रसभेद के संबंध में भी सस्कृत के आचार्यों की मुख्य प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है—प्रथम रसों की संख्या के विस्तार की और द्वितीय रसों की संख्या के संकोच की।

आरंभ में भरत ने तो मात्र आठ रस स्वीकार किए। उद्भट ने शात नामक

नवम रस को भी जोड दिया। अभिनवगुप्त ने तो नाट्यशास्त्रीय उद्धरणों के आधार पर भरत को ही शात रस के प्रवर्तन का श्रेय दिया है, किंतु उस अंश के प्रक्षिप्त होने की संभावना के आधार पर उद्भट को ही इसका अग्रणी माना जाता है। दडी ने माधुर्य गुण के अतर्गत वाक्रस और वस्तुरस नामक दो नूतन भेदों का विवेचन किया। रुद्रट ने प्रेयान् नामक अतिरिक्त रस की उद्भावना कर रस सख्या को दस तक पहुँचा दिया। भोज ने मति और गर्व नामक दो अभिनव स्थायी भावों के आधार पर उदात्त और उद्धत नामक दो नए रसों की कल्पना की। अभिनवगुप्त ने स्नेह और लौल्य नामक दो सर्वथा नवीन रसों को स्वीकृति प्रदान की। मधुसूदन सरस्वती और रूप गोस्वामी प्रभृति गौडीय आचार्यों ने भक्तिरस को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। भानुदत्त ने प्रवृत्तिमूलक माया रस की उद्भावना की। इन नवोद्भावित रसों को लेकर आचार्यों के बीच खंडन मडन भी खूब हुए।

जिस प्रकार रस-सख्या-विस्तार की प्रवृत्ति संस्कृत के आचार्यों में रही, उसी प्रकार रस-संख्या-संकोच की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। स्वयं भरत ने स्वस्थापित आठ रसों मे मूल रस चार ही माने थे। अग्निपुराणकार व्यास और शृ गार-प्रकाश के प्रणेता भोज ने शृंगार को महत्व ही नहीं दिया प्रत्युत अन्य सभी रसों को उसमें अंतर्भुक्त भी कर दिया। महाकवि भवभूति ने करुण को ही एक मात्र रस स्वीकर किया। विश्वनाथ के अतिवृद्ध प्रपितामह नारायण ने अद्भुत रस मे ही सारे रसों को समाविष्ट वताया। गौड़ीय आचार्य रूप गोस्वामी ने भक्ति-रस को ही एकमात्र रस स्वीकार किया तथा अन्य सभी रसों को पाँच प्रकार के मुख्य भक्तिरसों और सात प्रकार के गौण भक्तिरसों मे विनिवद्ध कर डाला। अतएव रसभेद की दिशा मे सस्कृत के रसशास्त्रियों के वीच जैसे संख्या प्रसारण की प्रवृत्ति थी, वैसे ही संख्या के आकु चन की भी।

पहले ही कहा जा चुका है कि हिंदी का रीतिकालीन रसशास्त्र सस्कृत काव्य-शास्त्र की पीठिका पर ही उद्भूत हुआ है। स्वभावतः सस्कृत रसशास्त्र की विभिन्न धाराओं के अवशेष इसमें पाए जाते हैं। रीतिकालीन समस्त रसशास्त्रियों को निरूपण वैविध्य के आधार पर तीन वर्गों मे विभक्त पाते हैं—सर्वा ग निरूपक आचार्य, सर्व-रस-निरूपक आचार्य और शृ गार-रस-निरूपक आचार्य। सर्वा ग-निरूपक आचार्य काव्य के सभी अगों का निरूपण करते हैं और रस को एक अंग मानकर चलते हैं। चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि प्रभृति इसी कोटि के आचार्य हैं। ये ध्वन्युत्तरकालीन मम्मट और विश्वनाथ से प्रभावित दीखते हैं। उक्त आचार्यों में भी कुछ तो मम्मट की भाँति असंलक्ष्यक्रम-

व्यंग्य ध्वनि के अंतर्गत रसनिरूपण करने वाले हैं और अन्य विश्वनाथ की तरह रस को ध्वनि का प्रभेद मानकर भी उसे निरूपण की दृष्टि से अपने ग्रथो मे स्वतत्र स्थान प्रदान करते हैं। भिखारीदास, कुमारमणिभट्ट, जनराज प्रभृति कुछ एक आचार्यों ने इस दिशा में विश्वनाथ का अनुसरण किया है और चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ आदि ने मम्मट का। सव-रस-निरूपक आचार्य वे है जिन्होंने काव्य के दशविध अगों में केवल रस लेकर ही अपने ग्र थ रचे। इन्होंने सामान्यतः नौ रसों की निरूपणा की है। आचार्यों का यह वर्ग भानुदत्त की रसतरगिणी से प्रभावित है। भानुदत्त से इनकी भिन्नता मात्र इतनी है कि जहाँ शृ गार के आलबन नायक नायिकाओं के विवरण के लिये भानुदत्त ने रसमजरी नामक पृथक् ग्रथ लिखा, वहाँ रीतिकालीन सर्व-रस-निरूपक आचार्यों ने शृ गार-रस के निरूपणप्रसग म ही नायक-नायिका-भेदों का भी विस्तारपूर्वक निवेश कर दिया। इस कोटि के आचार्यों मे तोष, देव, रसलीन, पद्माकर, ग्वाल प्रभृति अग्रणी है। इनके अतिरिक्त तीसरे वर्ग के वे आचार्य है जिन्होंने मात्र शृ गार रस और उसके आलवन नायक नायिकाओं का ही निरूपण अपने ग्रर्थों में किया। इस वर्ग के आचार्यों में कृपाराम, मतिराम, सुखदेव प्रभृति उल्लेखनीय हैं। इस वर्ग के ग्रंथों की मूल धारा भी भानुदत्त की रसमजरी में ही उपलब्ध होती है। यों भोज के शृंगारप्रकाश और व्यास के अग्निपुराण को इस वर्ग का आधार माना जा सकता है, पर विपयनिरूपण की दृष्टि से ये आचार्य भोज और व्यास की अपेक्षा भानुदत्त, विश्वनाथ और विद्यानाथ के ग्रथों से अधिक प्रभावित दीखते है। तत्वतः इस धारा का मूल कारण है रीतियुग की अतिशय शृ गार-प्रियता। अन्य वर्गों के आचार्यों मे भी सभी शृंगार को रसराज मानते हैं। परिणामस्वरूप रसराज शृ गार के स्वतत्र निरूपण के लिये आचार्यों का एक भिन्न वर्ग ही उठ खड़ा हुआ। ऊपर रीतिकालीन रसनिरूपक आचार्यो के जो तीन वर्ग स्वीकृत किए गए हैं, इनमे व्यतिक्रम भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ भिखारीदास ने एक ओर सर्वरस निरूपक 'रससारांश' लिखा तो दूसरी ओर शृ गार-रस-निरूपक 'शृ गारनिर्णय' और अनेकाग निरूपक 'काव्यनिर्णय' भी। देव की भी यह स्थिति है। अतएव आचार्यों की अपेक्षा उनके ग्रथों को ही उक्त वर्गों में बाँधना श्रेयस्कर है। उपर्यंकित तीन धाराओं से भिन्न एक चतुर्थ धारा भी केशव की रसिकप्रिया में उपलब्ध है। इन्होंने गौडीय भक्तिरस और परपरागत नौ रसों के मिश्रण से एक विलक्षण रसधारा प्रवाहित की जिसमे आलंवन तो व्रजराज कृष्ण हैं पर हैं वे नवरसमय तथा शृ गार नायक।

इतना निश्चित है कि हिंदी के रीतिग्रंथों में भी रसनिरूपण की विविध

धाराएँ एव पद्धतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें से कुछ तो सस्कृत की रसधाराओं से प्रभावित हैं और कुछ हैं स्वतः उद्भूत। मतिराम, कृपाराम आदि की मात्र शृंगार-रस-निरूपण-पद्धति और केशव की रसपद्धति को मैं स्वतः उद्भूत ही मानता हूँ। मतिराम, कृपाराम प्रभृति रीतिकालीन आचार्यों को भानुदत्त की रस-धारा से भिन्न कोटि का मैं इस अर्थ में मानता हूँ कि जहाँ भानुदत्त ने नवरस-निरूपक और शृंगार-रस-निरूपक रसतरंगिणी और रसमंजरी नामक दो भिन्न ग्रंथ लिखे वहाँ रीतिकालीन मतिराम प्रभृति आचार्यों ने केवल शृंगाररस-निरूपक ग्रंथ ही लिखे। केशव की रसपद्धति की स्वतंत्रता में तो किसी प्रकार का संदेह किया ही नहीं जा सकता।

शास्त्रीय विवेचन के उत्कर्ष की दृष्टि से हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों की मौलिकता नगण्य है। इनकी अपनी सीमाएँ थीं। एक तो इनके पास विवेचनात्मक गद्य का माध्यम नहीं था, दूसरे विवेचन की सूक्ष्मता में जाने की न तो इनके पास शक्ति थी और न उस युग के साहित्यप्रेमी राजाओं, रईसों, सामंतों और सामान्य पाठकों में तदनुकूल धैर्य ही था। ग्रंथप्रणयन के प्रयोजन पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परपरा से इनकी प्रवृत्ति में भी भिन्नता रही। उद्देश्य और प्रयोजन की भिन्नता के कारण इनकी विवेचन पद्धति में भी अंतर आया। इनके अतिरिक्त, संस्कृत के रसशास्त्र में ही रसमीमासा चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी। इन्हीं प्रतिबंधों से बाधित होकर इन्होंने रसग्रंथ लिखे। अतएव रसशास्त्रीय विषयों का ब्रजभाषा के माध्यम से पुनराख्यान ही इनके आचार्यत्व का मुख्य उद्देश्य रहा। यही कारण है कि इन्होंने सस्कृत काव्यशास्त्र के परवर्ती ग्रंथों को ही उपजीव्य बनाया, क्योंकि इन ग्रंथों में खंडन मंडन का अभाव है तथा विषयों का प्रतिपादन भी सरल रीति से किया गया है। तथापि कहीं तो 'घुणाक्षरन्याय' से और कहीं आयास-पूर्वक भी इन्होंने कई नूतन उद्भावनाएँ प्रस्तुत कर दिखाईं। उदाहरणार्थ, देव ने देश, प्रकृति, सत्व, नगर, ग्राम आदि के आधार पर नायिकाओं के कई वर्गों और उनके भेदों की उद्भावना की। तोष ने दूतियों के ही अनेक नवीन भेद गढ डाले। केशव ने विवाद और आधि नामक नूतन संचारी भावों की उद्भावना की। ग्वाल कवि ने परंपरागत आठ सात्विक भावों को चक्षु, श्रोत आदि पाँच ज्ञानेंद्रियों के आधार पर वर्गीकृत कर उनकी संख्या चालीस तक पहुँचा दी। इसी प्रकार रसभेदों की दिशा में केशव, तोष और रसलीन ने नौ रसों में से प्रत्येक के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक दो नवीन भेद स्वीकार किए। देव ने पहली बार करुण रस के पाँच भेद प्रतिपादित किए—करुण, अतिकरुण,

महाकरुण, लघुकरुण और सुखकरुण। भक्तिमूलक शांत और शुद्ध शांत भी देवकृत शांत रस के नवीन भेद हैं। रसदोषों के संबंध में भी केशव और देव की उद्भावना शक्ति का परिचय मिलता है। केशव ने प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसंधान और पात्रादुष्ट नामक सर्वथा नवीन रसदोष बताए हैं और देव ने सरस, नीरस, सम्मुख, विमुख, स्वनिष्ठ, परनिष्ट, भीत, अभीत, उदास और अधिक नामक दस नूतन रसदोषों की उद्भावना की है।

उपर्युक्त कतिचित् उद्भावनाओं के बावजूद भी रीतिकालीन रसशास्त्र को मौलिकता का श्रेय नहीं दिया जा सकता है। इसे मौलिक होने और विषयवस्तु को अग्रसरित करने का श्रेय तभी मिलता, यदि इस युग के रसशास्त्र ने रस-स्वरूप, रसनिष्पत्ति, और साधारणीकरण जैसे गंभीर विषयों के चिंतन क्षेत्र में प्रवेश किया होता। कवियों के व्यक्तित्व का अध्ययन कर रसशास्त्र की नूतन व्याख्या का अभी इन्हें पर्याप्त अवकाश प्राप्त था किंतु रीतियुगीन आचार्यों का ध्यान इस ओर भी न गया। इन्होंने वर्गीकरण की दिशा मे भी न्यूनाधिक नवीनता प्रदर्शित करनी चाही, पर संस्कृत युग में ही यह कार्य पराकाष्ठा को पार कर चुका था। अतएव इनके उद्भावन प्रयास विफल ही रहे और ये मौलिक होने के विरुद से बंचित रह गए।

तथापि अन्य दृष्टियों से हमें रीतिकालीन रसशास्त्र का महत्व स्वीकार करना ही होगा। प्रथम तो यह कि जगन्नाथ तक आकर संस्कृत काव्यशास्त्र में गत्यवरोध ही नहीं बल्कि शास्त्रीय चिंतन की धारा ही हमेशा के लिये सूख गई थी। ऐसी स्थिति में रीतिकालीन आचार्यों ने रसशास्त्रीय चिंतना को हिंदी के माध्यम से जीवित रखा। यदि इन्होंने इस परंपरा को कायम न रखा होता तो प्रायः प्राचीन रससिद्धात से आज हमारा संपर्क ही छूट गया होता। इस युग की दूसरी उपलब्धि यह है रस को ध्वनि के अंतर्भोग से मुक्त कर प्रशस्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया। यह ठीक है कि कतिपय सर्वांग निरूक आचार्यों ने इस दिशा में योग नहीं दिया और विसंवादी स्वर अपनाया किंतु अन्य वर्ग के आचार्यों ने एक स्वर से रसस्वातंत्र्य का जयघोष किया। इन आचार्यों की अन्यतम उपलब्धि यह भी है कि इन्होंने रससामान्य की धारा को विशुद्ध शृंगार धारा में मोड़ दिया और इस प्रकार व्यास और भोज की शृंगार-रसधारा को, जो कालक्रम में अवरुद्ध हो गई थी, पुनः प्रवाहित किया। कम से कम इन उपलब्धियों के कारण भी रीतिकालीन रसशास्त्र का महत्व हमें स्वीकार करना ही होगा।

यदि हम सैद्धातिक पक्ष को छोड़ कर इनके द्वारा रचित अभिनव उदाहरणों पर दृक्पात करें तो रीतिकालीन रसशास्त्र की महत्ता संस्कृत की अपेक्षा भी अधिक प्रतीत होगी। संस्कृत काव्यशास्त्र में पद्धति यह थी की आचार्यगण लक्षणात्मक कारिकाएँ, वृत्तियाँ और भाष्य तो स्वरचित प्रस्तुत करते थे पर उनके विश्लेपणार्थ जिन उदाहरणों को गृहीत करते थे वे प्राचीन और समकालीन काव्यकृतियों के अंश होते थे। रीतिकाल के सभी आचार्य चूँकि कवि भी थे अतएव वे अपनी कवि प्रतिभा का परिचय स्वरचित उदाहरणों के द्वारा ही देते थे। यदि रीतिकालीन काव्यशास्त्र किंवा रसशास्त्रीय अश से ही चुने चुनाए उदाहरणों को संकलित किया जाय तो वह सकलन सौंदर्य, प्रभाव, भाषासौष्ठव आदि अनेक दृष्टियों से अभिनव और महत्वपूर्ण होगा। रीतिकालीन आचार्यों की इतनी देन तो नितांत निःसदिग्ध है।

*

रीतिकालीन रसशास्त्र

[द्वितीय खंड]

रीतिकालीन रसशास्त्र

प्रथम अध्याय

रसस्वरूप और अभिव्यक्ति

केशव

१.

प्रथम सिंगार सुहास्य रस करुना रुद्र सु बीर।
भय बीभत्स बखानियें अद्‌भुत सात सुधीर॥
नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सब को 'केशवदास' हरि, नायक है शृंगार॥

रसिकप्रिया, १।१५-१६

२.

श्री वृषभानु-कुमारि-हेत शृंगार रूपमय।
बास हास-रस हरे, मातुबंधन करुनामय॥
केसी प्रति अति रौद्र बीर मारो वत्सासुर।
भय दावानाल पान, पियो बोभत्स वकी उर॥
अति अद्‌भुत वंचि विरंचि मनि. सांत संतते सोच चित।
कहि केशव से वहु रसिक जन, नवरसमय ब्रजराज नित॥

वही, १।२

३.

मिल विभाव अनुभाव पुनि, संचारी सु अनूप।
व्यंग करे थिर भाव जो सोई रसु सुख रूप॥[1]

वही १।२

१. रसिक प्रिया का यह छंद पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित तथा हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'केशवग्रंथावली' के प्रथम खंड में नहीं हैं। पर डा० भगीरथ मिश्र एवं डा० सत्यदेव चौधरी प्रभृति विद्वानों ने अपने अपने ग्रंथों में इसे उद्‌धृत किया है। पता नहीं, उनके पास रसिकप्रिया की कौन सी प्रति थी। द्रष्टव्य—हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ०६७ (फुटनोट) तथा हिंदी रीतिपरंपरा के प्रमुख आचार्य, पृ० २८१।

चिंतामणि

१.

असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि आनि रसादिक चित्त।
इते आदि पद लभ्य जे तिन्हें गनावत मित्त॥
प्रथमहिं रस पुनि भाव गनि तिनके पुनि आभास।
भाव सांति अनभाव को उदै बखानि प्रकास॥
भावसंधि पुनि सवलता भावन की मन आनि।
असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि तिनके भेद बखानि॥

कविकुलकल्पतरु, ५।४५-४७

२.

इन शब्दन तें कहत हूँ बंधन[1] रस को होइ।
यातें रस सब ठौर में व्यंग्य कहत सब कोइ॥

वही, ८।१५३

३.

सगुनालंकारन सहित दोष रहित जो होइ।
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोइ॥
जे रस आगे के धरम ते गुन वरने जात।
आतप के ज्यों सूरतादिक निह्चल अवदात॥
सवै अर्थं तबु वर्णिये जीवित रस जिय जानि।
अलंकार हारादि ते उपमादिक मन आनि॥
श्लेषादि गन सूरतादिक से मानों चित्त।
वरनौं रीति सुभाव ज्यौं वृत्ति वृत्ति सी मित्त॥
पद अवगुन विश्राम सों सज़्जा सज्जा जानि।
रस आस्वादन भेद जे पाक पाक से मानि॥
कवित पुरुष की साजु सव समुरु लोक की रीति।
गुन विचार अब करत हौं सुनो सुकवि करि प्रीति॥

वही, १।७-१२

४.

वत कहाउ रस मै जु है कबित कहावे सोइ।
[गद्य पद्य द्वै भाँति सो सुरवानी मै होइ]॥

वही, १।४

१. प्रतिबंध, बाधा।

५.

यह रस पुनि सु अलक्ष्यक्रमव्यंग आपु धुनि हारि।
शृंगारादि विशेष पद बाचक कहत, विचारि॥
वाचक पद रसु यह जो सब साधारन नाम।
चिंतामनि कवि कहत है समुझौ बुध अभिराम॥
इन शब्दन तें कहत हूँ बंधन रस की होइ।
या तें (हि) रस ठौर में व्यंग्य कहत सब कोइ॥

वही, ८।१५०-१५२

६.

थाई सामाजिक हिय बसत वासनारूप॥
व्यक्त विभावादिकनि मिलि रस ह्वै मिलत अनूप॥

वही, ५।६६

७.

रत्यादिक हेतु जो काज और सहकारि।
जग में तेई कहत हैं, आन नाम निरधारि॥
विभावनादिक अलौकिक व्यापारानि सु मित्त।
से विभाव अनुभाव अरु सचारि धरि चित्त॥

वही, ५।६२-६४

८.

साधारण व्यापार बल सब साधारन होइ।
नियत प्रभातहि में जदपि तदपि अपरिमित होइ॥

वही, ५।६१

९.

गनि विभाव अनुभाव अरु संचारीन मिलाइ।
जित थाई है भाव जो सो रस रूप गनाइ॥

वही, ५।४८

तोष

१.

कवित बीचिका बीच ही अर्थांतर[1] गन जोइ।
सुलभ सुमति[2] को कुमति[3] को दुरलभ जानो सोइ॥

सुधानिधि, छंद ७

१. रस। २. सहृदय। ३. असहृदय।

२.

दंपति जहँ लों सुख लहै कामकला कें फंद।
सो सिंगार मे प्रेम है थाई आनँद कंद॥

वही, छंद १२

३.

रसराज श्रीसिंगार रस में केलि प्रेम प्रकास है।
अरु हँसी आवै स्वाँग तर्क बिलोकि हँसिबो हास है॥
उतसाह वर्धन रोमरोमनि चारि विधि को बीर है।
रन दान दाया सत्य चारि प्रकार बरनत धीर है॥
अनहोनि लखि आचरज करिवो वैसु अद्भुत जानिये।
करि कोप रन कर्तव्य उद्यत बोल रौद्र बखानिये॥
घिन होत लखि सुनि मलिनता[2] वीभत्स को यह हाल है।
भय उपल लखि सहमै जहाँ सोइ या भयानक ख्याल है॥
हरिभक्ति सज्जन संग तीरथ साधुता सुभ सांत है।
यहि भाँति रस के लक्षनै कहि लक्ष्य की वीख्यात है॥[1]

वही, छंद ४४१-४४६

कुलपति

१.

मिलि विभाव अनुभाव अरु, संचारी सु अनूप।
व्यंग कियो थिर भाव जो, सोई रस सुख भूप॥

रसरहस्य, ८।३४

२.

नृत्य कवित्त देखत सुनत भये आवरन भंग।
आनँद रूप प्रकाश है, चेतन ही रस अंग॥

वही, ३।३५

३.

जैसो सुख है ब्रह्म को मिले जगत सुधि जाति।
सोई गति रस मे मगन भये सुरस नौ भाँति॥

वही, ३।३६

१. तोष ने चर्चा तो नौ रसो की की है (अब नवहूँ रस को कहैं लक्षन लक्ष्य विचार) पर विवरण देते समय इन्होने करुण रस को विस्मृत कर दिया है। उपर्युक्त उद्धरण में करुण रस का उल्लेख नहीं है।

२. रजोगुण-तमोगुणजन्य मलिनता

४.

कहुँ विभाव, अनुभाव कहुँ, कहुँ संचारी भाव।
न्यारेऊ प्रगटत रसहिं, मिलहिं सुपूरन दाव ॥

वही, ३।५३

देव

१.

प्रथम शृंगार नौहू रसनि को सार जाको
नायका अधार सो जो नायक के संग है।
संयोग वियोग सो सिंगार रस द्वै विध वियोग
चारि विधि ओ संयोग एक अंग है।
पूरवानुराग मान प्रवास करुन मिल्यो
चौविध वियोग दस दसनि के रंग है।
हावभाव लोग उपभोग सविलास हास
विविध संभोग सुखसागर तरंग है ॥

सुखसागरतरंग, पद संख्या ३६

२.

जो विभाव अनुभाव अरु विभिचारिनु करि होइ।
थिति की पूरन वासना, कुकवि कहत रस सोई ॥

—भावविलास, विलास ३, पृ० ६५

३.

जोहि प्रथम अनुराग में, नहिं पूरब अनुभाव।
तो कहिये दंपतिनु के, जन्मांतर के भाव ॥
ताहि विभावादिकन ते, थिति संपूरन जानि।
लौकिक और अलौकिकहि, द्वै विधि कहत बखानि ॥
नयनादिक इंद्रियनु के जोगहि लौकिक जानु।
आतम मन संयोग तें, होय अलौकिक ज्ञानु ॥

वही, विलास। ३, पृ० ६५

४.

चित थापित थिर बीज विधि, होत अंकुरित भाव।
चित वदलित, दल, फूलि फलि, बरसत सुरस सुभाव ॥
खेत, बीज, अंकुर, सलिल, साखा, दल, फल, फूल।
आठ अंग रस अमर तरु, चुवत अमी रस मूल ॥
खेत पात्र, प्रारब्ध, विधि, बीज सुअंकुर जोग।

सलिल नेह, भाव सु विटप, छंद पत्र परिभोग॥
अलंकार शब्दार्थ के फूल फलनि आमोद।
मधुर सुजस रस अमर तरु, अमर अमी रसमोद॥

शब्दरसायन, प्रकाश ३, पृ० २८

५.

रस अंकुर थाई, विभाव रस के उपजावन,
रस अनुभव अनुभव, सात्विको रस झलकावन,
छिन छिन नाना रूप, रसनि संचारी उझके।

वही, प्रकाश ३, पृ० २९

६,

कहे थाई भाव औ विभाव अनुभाव भाव
सातुक[1] संचारी हाव कारन शृंगार के।
दंपति प्रथम प्रेम अंकुर सुथाई भाव
प्रथम श्रवण दरसन अधिकार के।
आलंवन उद्दीपन द्विविध भाव अनुभाव
भाव वहु सातुक सुआठही प्रकारके।
तैंतिस संचारी दश हाव रस पोषक
प्रकाशक विशेषक[2] विलासक[3] विहार के॥

सुखसागरतरंग, छंद ३८, पृ० १३

कुमारमणिभट्ट

१.

काव्यप्रकाश विचार कछु रचि भाषा में हाल।
पंडित सुकवि 'कुमारमनि' कीन्हौं 'रसिकरसाल'॥

रसिकरसाल, १।४

२.

मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव॥

वही, ३।१०

१. सात्विक। २. विशेषता पहुँचाने वाला। ३. आस्वादयोग्य बनाने वाला।

३.

रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विशेष।
स्वादु विशेषहि तें सबै भाव प्रभृति रस लेख॥
आनंद अंकुर तब भाव थाइ संचारि।
विभावादि कहवाइ वह वढ़ि रस होत विचारि॥

वही, ३।२-३

४.

ज्यौं मरिचादि सितादि मिलि पानक[1] स्वादु विशेषि।
विभावादि थाई मिलें रसै होत त्यों देखि॥
लौकिक तथा अलोकिकै द्वै जानहूँ रस ठौर।
लौकिक लोक प्रसिद्ध त्यौ, कवित नृत्य मे और॥
शृंगारादिक लोकगत कवित नृत्य में ल्याइ।
होत अलौकिक है सबै रस आनंद बढ़ाइ॥
सकल लोक रस के सिरै आनंद लोक विलच्छ।
रसै एक अनुभवत है पंडित सहृदय दच्छ॥
आनंद वृंद सुकान्ह रस जगत ताहि को रूप।
तातें तिय पुरुषादि गन सब रस कान्ह सरूप॥
वंहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव।

वही, ३।४-६

सोमनाथ

१.

जहँ विभाव अनुभाव अरु सहित संचारी भाव।
व्यंग्य क्रियो थिर भाव इहि सो रस रूप बताव॥
सुनि कवित्त को चित्त मधि[2] सुधि न रहे कुछ और।
होइ मगन वहि मोद मे सो रस कहि सिरमौर॥

रसपीयूषनिधि, ७।४४-४५

भिखारीदास

१.

जहँ विभाव, अनुभाव थिर चर भावन को ज्ञान।
एक ठौर ही पाइए सो रसरूप प्रमान॥

—रससारांश, ४७८

१. एक प्रकार का पेय पदार्थ। २. मध्य।

२.

लखि विभाव अनुभाव ही, चर थिर भावै नेकु।
रस सामग्री जो रसै, रसै गनै धरि टेकु॥

काव्यनिर्णय, ४।१५

३.

कारन मानि विभाव अरु कारज है अनुभाउ।

× × × ×

सबही को करि एक पनि देत रसै ठहराइ॥

वही, ४।८-१४

४.

जा हिए प्रीत न सोक है, हँसी न उत्साह ठान।
ते बातें सुन क्यों द्रवै, दृढ़ ह्वै रहे पषान॥[1]

वही, ४७

रसलीन

१.

जो थायी रस बीज विधि मानस चित छित[2] माँहि।
ताको अंकुर जो कछू सो थाई कहि वाहि॥
अवसर सम उपजावने सरसावत जल रूप।
अलिवन उद्दीपन हियो जन विभाव अनुरूप॥
अनुभावहु तरु प्रगट करि जानि लेहु यह बात।
व्यभिचारी है फूल सों छिन छिन फूलत जात॥
तिनि सँजोग मकरंद[3] लों रस उपजत है आनि।
रसिक मधुप कवि चित्त करि ताहि करै पहिचानि।

रसप्रबोध, ६-१२

२.

रत्यादिक थिरभाव के कारन जान विभाव।
कारज है अनुभाव अरु सहकारी चरभाव॥
प्रगटत विरह विभाव पुनि कछु प्रगटत अनुभाव।

१. पत्थर। २. भूमि। ३. पराग।

अति प्रगटत हैं आइ पुनि तन अनुभव चरभाव[1] ॥
थाई के यों प्रगट तें रस कहियत है सोय।
जिहि स्वादिनि से भूलि सब महागमन[2] मन होय ॥
सो रस चित्र कवित्त में कविजन चित्र समान।
जाहि लखत ही रीझि कै मोहत रसिक सुजान ॥
चाही को रस कहत हैं सो कवि ग्रंथनि ल्याइ।
अपने अपने रूप में नवविधि लिखे बनाइ ॥

वही,३१-३५।

रूपसाहि

१

जहँ विभाव अनुभाव मिलि सातुक[3] अरु विभिचार।
स्थाईन तें पुष्ट जहँ तहँ पूरन रस सार ॥

रूपविलास, ११-१

२.

ब्रह्मानंद अखंड जोहि पहुँ लसत लहि ग्यान।
सांत अलौकिक रस कह्यो जानत साधु सुजान ॥
लोक विषय सुनि निरषि जहि पै अनंद जु होइ।
तीन भाँति को सुकवि कहि लौकिक रस यह सोइ ॥

वही, ११।३-४

शिवनाथ

१.

नवरस को बहु भेद है विविध प्रकार विकार।
सब को कवि शिवनाथ जू नायक है शृंगार ॥

रसवृष्टि, १६।३

२.

सुख समूह दंपति लहै परिपूरण रति भाव।
सो सिंगारु रस वर्णिये सुनत होइ चित भाव ॥

वही, १६।५

१. संचारी भाव। २. मधुमती भूमिका; तन्मयता की अवस्था। ३. सात्विक भाव।

३.

नवरस वर्णन हौं कियो अपनी बुद्धि विचारि।
भावभेदरसमोद को बुधजन लेहु सुधारि।
वरण्यों नायक नायका अपनी मति अनुमान।
यह ढीठी शिवनाथ की क्षमियो सकल सुजान॥
राधा राधारमन के वरणे कछुक विलास।
कियो ग्रंथ रसवृष्टि है कविजन करो प्रकास॥
जो रसवृष्टि पढ़ै गुनै जानै नवरस रीति।
उपजै ज्ञान विवेक रस कृष्ण चरण सों प्रीति॥[1]

वही, १६।५०-५३

जनराज

१.

सुने लखे सुख ऊपजै तासौ दुष मिटि जाय।
पुष्ट विभावादिकन सों तेई रस ठहराय॥

कवितारसविनोद, १०।१

२.

रस को कारन भाव हैं प्रथमहिं बर्नत ताहि।
बहुरि विभावादिकन सों कहिहौं भेद सराहि॥
प्रथम जु उपजत चित्त में रहत सदाई साथ।
तासौ वर्नत भाव हैं सब सुकविन के नाथ॥

वही, १०।२-३

३.

है विभाव अनुभाव पुनि संचारी थिर भाव।
चारि भाव ये नाम हैं पाँचौ स्वातिक गाय॥

वही, १०।२-३

उजियारे कवि

१.

सह विभाव अनुभाव चर सातुक भाव समोइ।
पूरन थाई भाव जो सो रस कहि कवि लोइ॥

१. रसवृष्टि के प्रणयन का उद्देश्य काव्यात्मक रस का निरूपण नहीं है प्रत्युत पाठको में ज्ञान, विवेक और श्री कृष्णचरणों में प्रीति का उत्पादन है। अतएव इसे भक्ति-रस-निरूपक ग्रंथ ही मानना चाहिए।

भाव विभाव अनुभाव अरु संचारी पहचानि।
इनकरि मन विरमै जहाँ तहाँ पुनि रस कवि जानि॥
जगी जोति थिर भाव की उदित वासना जोइ।
ता सहँ पुनि रस कहत हैं कवि कोविद सब कोइ॥
सह विभाव अनुभाव अरु सातुक संचारीन।
दई अगाइ[1] जु वासना कहत सकल परबीन॥

रसचंद्रिका, ३।१-४

२.

प्रश्न

जहाँ पूरब अनुभव नहिं तहँ पूरब अनुराग।
सो रस तहँ काहे नही लछन मिलत सुभाग॥

उत्तर

तहँ पुनि अनुभव जानियै और जन्म कौ जोइ।

वही, ३।५-६

पद्माकर

१.

मिलि विभाव अनुभाव अरु संचारिन के वृंद।
परिपूरन थिर भाव जो सु रसरूप आनंद॥
जो मन पाइ विकार कछु लखि दृढ़ होत अनूप।
तो पूरन थिर भाव को बरनत कवि रसरूप॥

जगद्विनोद, पद ६०८-६

२.

ह्वै सब भावन में सिरै टरत न कोटि उपाव।
ह्वै परिपूरन होत रस तेई थाई भाव॥

वही, पद ५७७

बेनीप्रवीन

१.

जहँ विभाव अनुभाव विभिचारी देत प्रकास।
स्थाई भावहि मोदमय, सोई रस की रास॥

नवरसतरंग, दोहा ३०

१. जगा दिया, उद्रिक्त।

२.

नवरस मे व्रजराज नित, कहत सुकवि प्राचीन।
सो नवरस सुनि रीझिहै, नवल कृस्न परवीन ॥

वही, दोहा १८

३.

स्याम वरण व्रजराज पति, स्थाई है रतिभाव।
ताहि कहत सिंगार हैं, सकल रसन को राव ॥

वही, दोहा ४११

करनकवि

१.

भाव विभावनि करि सदा होत जु है परिपुष्ट।
ताही सो रस कहत जे रसविद्यनि[1] संतुष्ट ॥

रसकल्लोलपद ३१

२.

भाव विभावनुभाव ए संचारी सुषदाइ।
भरत सूत[2] मत कहत है रस के सकल सहाइ ॥
भावादिक ए होत हैं नौहू रस के हेत।
ताही ते परगट इन्हें पहिले ही कहि देत ॥

वही, पद ६-७

३.

रस अनुकूल विकार को भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सरीर इक द्वै विध होत उदोत ॥
थाई और संचारियो दुविध मानसिक मानि।
कहि विकार सारीर सव सात्विक भाव वखानि ॥

वही, पद ८-९

प्रतापसाहि

१.

मिलि विभाव अनुभाव मिलि मिलि संचारी भाव।
व्यंग्य होत थाई तहाँ रस कहि सो कविराव ॥

काव्यविलास, ३।२२

१. रसशास्त्र में। २. सूत्र।

२.

चारि पच्छ कहि रसहि के काव्यप्रकाश बखानि।
यक विभाव के ज्ञान तें रसहि जानत जानि॥
यक अनुभित ते जानिये यक भोगहि[1] ते जानि।
येक व्यजना हेत है चारि भाँति के मानि॥

वही, ३।१५-१६

३.

भट्टलोल्लट का मत—

जहाँ परस्पर होत है रसविवाद संबंध।
सो विभाव के ज्ञान ते जानो रस संबंध॥

वही, ३।१७

शंकुक का मत—

विभावादि थाई जहाँ दो धन मिलि जहँ होइ।
अनुमापक मापक कहत रस संबंध सु सोइ॥
जहँ विभाव परमर्ष ते जौ रस कहियत होइ।
सो अनुमित रस जानिये कहत सुकवि सब कोइ॥

वही, ३।१८

भट्टनायक का मत—

विभावादि संयोग ते भोगक भोग बरवानि।
जहँ होइ संबंध यह तहं सरस पहिचानि॥
जहं विभाव भावांत ते साम्य भाव व्यापार।
सो भोगी रस जानिये मम्मट मत निरधार॥

वही, ३।१९

अभिव गुप्त का मत—

चर्वनाजन्य[2] ते रस जहाँ व्यक्ति होई जेहि ठौर।
कह्यो व्यंजना हेत सो कहत सुकवि सिरमौर॥

वही, ३।२०

१. भोगव्यापार द्वारा आस्वादनीय। २. आस्वादजन्य।

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

लहि विभाव अनुभाव अरु संचारिन के संग।
वर्तमान थिर भाव जो सो रस जान अभंग॥

रसिकविनोद, छंद ३८७

२.

सो थिर भावै रस कहैं जब परिपूरन होइ।
कछुक अपूरनता लहै भाव कहावत सोइ॥
अविरोधी सविरोध सब भावन सहित प्रधान।
मनविकार अंतर अलख[1] सो थिर भाव प्रमान॥

वही, छंद ३६४-३६५

३.

मन विकार जो होत है ताको कहियत भाव।
थिर विभाव, अनुभाव अरु संचारी तहँ नाव॥

वही, छंद २३८।

४.

है व्यापक अरु विमल शुचि सदा रहत सुखरूप।
विद्या ज्ञान सुसंग कर रस भ्रम लखत अनूप॥

वही, छंद २२६

ग्वालकवि

१.

जहँ विभाव अनुभाव अरु सात्विक औ संचारि।
ये मिलि थिति को पूरही सो रस सुकवि उचारि॥
चिदानंद घन ब्रह्म सम रस है श्रुति परमान।
दुविधि सुरस लौकिक जु इक दुतिय अलौकिक जान।
रस जु अलौकिक है त्रिधा स्वाप्निक एक विचार।
मानोरथिक सुजानियै औपनर्यानकहि धार॥
औपनयनिक[2] जो रस लिख्यौ सो नौविधि मतिधीर।
कहि शृंगार जु हाँस अरु करुना रौद्र सुवीर॥
फेरि भयानक भाखिकैं वीभत्स जु वरनात।
अद्‌भुत लौं ये आठ रस वरनत नाट्य दिखात॥
सात सु नवमो काव्यकर कहत काव्य के माँहि।

रसरंग, २।१-६

१. अलक्षित। २. औपनयिक।

२.

आलंबन तै जनित जो बीजरूप दरसाय।
अटल अपरिपूरन रहै सो थाई नौ गाय।

३.

सो सिंगर रस के प्रभु हैं श्रीकृष्ण रसाल॥
सो श्रीकृष्ण रसों को कहिये धनमन प्रान।
जिनको लीला गाय के तरत जु सकल जहान॥

वही, १।२-३

× × ×

नौ हू रस के भेद सब बरनत सहित उमंग।
राधाकृष्ण चरित्रमय रसिकन कों रसरंग॥

वही, १।६

रसिकबिहारी (रसिकेश)

१.

कहि विभाव, अनुभाव अरु संचारी मिलि होत।
अस्थाई से प्रगट रस, ताहि कहें कवि गोत॥

काव्यसुधाकर, १०।१

नंदराम

१.

जहँ विभाव अनुभाव अरु संचारिन को भौर।
ह्वै पूरन थिरभाव जुत सुरस रूप तेहि ठौर॥
जैसे इच्छु[1] विकार तै होत सरकरा[2] कद।
तैसो ही थिरभाव ते सुरस रूप आनंद॥

श्रृंगारदर्पण, १०।१-२

लछिराम

१.

थाई अचल विभावै अरु अनुभाव।
थाई थिर परिपूरन तहँ रसराव॥

१. इक्षु, ऊख। २. शर्करा, शक्कर या गुड़।

भावहि ते रस प्रगटहिं मन विकार।
पै विकार सों आनंद रस अवतार॥
तिन रस नाम सराहत प्रथम शृंगार।
हास्य करून गनि रौद्रहि वीर विचार॥
भय वीभत्स जु अद्भुत सात सुवेस।
नवरस नागर वरने सु कवि नरेस॥

महेश्वरविलास, ४।२६१-६४

२.

विहरत सब रस भीतर बर शृंगार।
बरनत प्रथमहि तातें सुमति उदार॥

वही, २।१

*

द्वितीय अध्याय

विभाव [आलंबन और उद्दीपन]

कृपाराम

१.

समय अवस्था तें परे स्वाधिनपतिका मानि[1]।
कृपाराम यों कहत हैं भरत ग्रंथ अनुमानि ॥

हिततरगिनी, दोहा ४ और ३५

२.

तीन भेद नारीन के लोक लोक मे जानि।
स्वकीया परकीया सुपुनि, बारबधू पहिचानि ।
उत्तम मध्यम अधम तिय[1], प्रकृति भेद तें जानि ॥

वही, दोहा १६, १७

नंददास

१.

जग में जुवती त्रय परकार। करि करता निज रस विस्तार।
प्रथम स्वकीया पुनि करकीया। इक सामानि[2] बखानी तिया ॥
ते पुनि तीन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढा विहार।
मुग्धा हू पुनि द्वै विधि गनी ज्यों उत्तर उत्तर रस सनी ॥
प्रथमहि मुग्ध नऊढा[3] होय। पुनि विश्रब्ध नऊढा सोय।

रसमंजरी (नंददास ग्रंथावली), पृ० १४५

२.

तह केई धीरा केइ अधीरा। केइ धीरा धीरा रस भीरा।
मुग्धा मे धीरादिक लच्छिन प्रगट नही पै लखै विचच्छिन[4] ॥
ज्यों सुंदर तरु अंकुर मांही। दल फल फूल डार सब ताही।
मध्या में ते प्रगट जनावें। पल्लव कली फूल होय आवै ॥

वही, पृ० १४७

३.

नाइक बरनें चारि प्रकार। प्रमदा[5] प्रेम बढावनहार ॥
एक धृष्ट, इक सठ, एक दच्छिन। इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन ॥

वही, पृ० १५६

१. नायिका। २. सामान्या, गणिका। ३. नवोढा, नव विवाहिता।
४. विचक्षण, विद्वान्। ५. नारी।

रहीम

१.

स्वकीया

रहत नयन के कोरवा, चितवन छाय।
चलत न पग पैजनियाँ, मग ठहराय॥

बरवै नायिका भेद, ४

परकीया

सुनि धुनि कान मुरलिआ, रागन भेद।
गैल न छाँड़त गोरिया, गनत न खेद॥

वही, १३

सामान्या

लखि लखि धनिक धनिअवा, बनवति भेख।
रहि गइ हेरि अरसिआ, फजरा नेख॥

वही, ३३

उत्तमा

लखि अपराध पियरवा, नहि रिसि कीन्ह।
बिहँसत चँदन चउकिया, बैठन दीन्ह॥

वही, ६३

मध्यमा

बिनगुन पिव उर हरवा, उपरेउ हेरि।
चुप ह्वै चित्र पुतरिया, रहि चख[1] फेरि॥

वही, ६४

अधमा

बार बार गुन मनवा, जनि करु नारि।
मानिक औ गज मोतिया, जो लगि बारि॥

वही, ६५

केशव

१.

जिनतें जगत अनेक रस, प्रगट होत अनयास।
तिन सों बिभति बिभाव करि, बरनत केशवदास॥

रसिकप्रिया, ६।३

१. चक्षु, आँख।

२.

सब बिभाव द्वै भाँति के केशवदास बखानि।
आलबन इक दूसरो उद्दीपन मन आनि॥
जिन्हें अतन[1] अवलंबई ते आलबन जानि।
जिन तें दीपति होति है ते उद्दीप बखानि॥

वही, ६।४-५

३.

दंपति जोबन रूप जाति लच्छन जुत सखि गन।
कोकिल कलित बसंत फूल फल दल अलि उपवन॥
जलचर जलजुत अमल कमल कमला कमलाकर।
चातिक मोर सु शब्द तड़ित घन अंबुद[2] अंबर॥
सुभ सेज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान[3] मनि।
नव नृत्य भेद बीनादि रव आलंबन 'केसव' बरनि॥

वही, ६।६

४.

अभिमानी त्यागी तरुन कोककलानि प्रवीन।
भव्य छमी सुंदर धनी, सुचिरुचि सदा कुलीन॥
ये गुन केशव जासु में, सोई नायक जानि।

वही, २१-२

५.

जिन ते दीपति होत है ते उद्दीप बखानि।

वही, ६।५

× × ×

अवलोकनि आलाप परिरंभन[4] नखरदान[5]।
चुंबनादि उद्दीप ये मर्दन परस[6] प्रमान॥

वही, ६।७

१. भाव, काम। २. बादल। ३. वस्त्र। ४. आलिंगन। ५. नखक्षत।
६. स्पर्श।

चिंतामणि

१.

थाइ हेतु जग मध्य जो कवित मध्य सु विभाव।
आलंवन उद्दीपनो द्विविध प्रसिद्ध गनाव॥

कविकुलकल्पतरु, ५।६६

२.

क– सकल धरमजुत नियुत धन विक्रम पूरो होइ।
ताको नायक कहत हैं कवि पंडित सब कोइ॥

वही, ५।२।१

ख– आलंबन शृंगार को तिय नायका वखानि।
कलान प्रवीन विलासिनी सुंदरता की खानि।

वही, ५।१।६६

उद्दीपन जे भाव ए सुने कहूँ हम नाँहि।
चन्द्रोद्यानादिक कहे समुझे ना के जाहि॥
आलंवन के गुन समै आलंवन के वीच।
ते उद्दीपन कोक है कथन लगे यह नीच॥
सौन्दर्यादिक गुन रहित आलंवनै न होइ।
आलंवन गुन रहित जो वरनि सकै नहिं कोइ।
चेष्टा ताकी आपुही वरनेंगे अनुभाव।
अव उद्दीपन कहत है कैसो बुद्धि प्रभाव॥
आलंवन की अलंकृत है आलंवन माह।
सो उद्दीपन होत है जो वरनत कवि नाह॥

कविकुलकल्पतरू, ५।४४–४८

तोष

१.

सो विभाव कहि सो उपजति रस की दीप।
तामे द्वै विधि कहत हैं आलंवन उद्दीप॥

सुधानिधि, पद ९

२.

रस सिंगार के भाँति वहु होत विभाव सहाइ।
ता विन रस ठहरे नही विन धीरज धन नाइ॥
रस को अंग न ठहरतो आलंवन विन नेक[1]।
उद्दीपन ते वढ़त है वरने सुकवि अनेक॥

—वही, ३२७–३२८

१. थोड़ा।

३.

प्रीतम के सुष सों सुष औ दुख सो दुष सो सुकिया[1] जिय जानो।
जो परनायक सो रति मानति ता तिय को परकीय बखानो।
औ धनदायक सो जो रमै, कहि तोष तिन्है गनिका पहिचानो॥
लक्षन जानि यहा क्रम ते पुनि लक्ष्य अनेक प्रकार बखानो।

वही, १६

४.

सुंदर सूर सुसील सुलक्षन साधु सखा मन वाचन कायक।
धर्मधुरंधर धीर धराधिप दीन दयाल अधीन सहायक।
जोर जुबा जनवंत जसी कहि तोष जहान मे जाहिर लायक।
सायक आदि चतुर्दश विधानि जानत है तेहि जानिये नायक।

—वही, २३६

५.

क– उद्दीपन में प्रथम ही सखी दूतिका होइ।
जाति जाति को चतुरता बनरत है सब कोइ॥

—सुधानिधि, २३७

ख– सुभ समीर सुरत स्वर सुमन सुफल पिय चित्त।
सुबसन चितवन रसकथा ये उद्दीपन मित्त॥

—वही, २६२

मतिराम

१.

उपजत जाहि बिलोकि के चित्त बीच रस भाव।
ताहि बखानत नायका, जे प्रबीन कविराव॥

रसराज, छंद ५

२.

तरुन, सुघर सुंदर सकल, काम कलानि प्रबीन।
नायक सो 'मतिराम' कहि, कबित गीत रस लीन॥

वही, छंद २३७

३.

क– चंद, कमल, चंदन अगर, ऋतु, बन, बाग-विहार।
उद्दीपन श्रृंगार के जे उज्वल संभार॥

वही, छंद २८४

१. स्वकीया।

ख- सखी दूतिका जानिए उद्दीपन के भेद।
नायक अरु नायका को हरै विरह को खेद॥
वही, २८७

कुलपति

१.

जिनतें जिनको जगत प्रगटत हैं थिर भाव।
तेई नित्य कवित्त में पावहि नाम विभाव॥
रसरहस्य, ३।११

२.

जे निवास थिरभाव के ते आलंबन जानि।
सुधि जिनके लखे ते उद्दीप वखानि॥
आलंवन रति के कहत नवल नारि अरु कंत।
उद्दीपन वहु भाँति है वन घन, शरद वसंत॥
वही, ३।१४-१५

देव

१.

जे विशेष करि रसनि को, उपजावत हैं भाव।
भरतादिक सतकवि कहै, तिनको कहत विभाव॥
ते विभाव द्वै भाँति के, कोविद कहत वखानि।
आलंवन कहि देव अरु, उद्दीपन उर आनि॥
रस उपजै आलंवि जिहि, सो आलंवन होइ।
रसहि जगावै दीप ज्यों, उद्दीपन कहि सोइ॥
भावविलास, विलास १, पृ० ८

२.

उपजै रस जाते जहाँ, कै जाते अधिकाइ।
सो विभाव, कविराज है, द्वै विधि दियो वताइ॥
आलंवन उद्दीपन जानो, द्वै विधि सुकवि विभाव वखानो।
नायकादि आलंवन होई, उपवन, सुरभि उदीपन सोई॥
शब्दरसायन, प्रकाश, ३, पृ० ३४

३.

क- गीत, नृत्य उपवन गमन, आभूषन बन केलि।
उद्दीपन शृंगार के, विधु वसंत वन वेलि॥
भावविलास, विलास १, पृ० ६

ख– निज निज के संजोग तें, रस जिय उपजतु होइ।
औरो विविध विभाव बहु, बरनैं कवि सब कोइ॥

वही, वि० १, पृ० १३

४.

काम अधिकारी जगत लखै न रूप कुरूप।
हाथ लिए डोलत फिरै कामिनी छरी अनूप॥
तातें कामिनि एक ही कहन सुनन को भेद।
राचै पागै प्रेमरस मेटै मन के खेद॥

रसविलास, ४। १-४

कुमारमणिभट्ट

१.

स्थाइ भाव रामादिगत, सामाजिक जिय जानि।
जे विशेष भावित करैं, ते विभाव पहिचानि॥
होत जाहि आलंबि रस, सो आलंब विभाव।
रस उद्दीपन जे करैं, ते उद्दीप विभाव॥
तहँ नायक अरु नायिका, रस सिंगार आलंब।
यथाजोग औरे रसँहि मनि आलंब कदंब॥

रसिकरसाल, ५।१-३

२.

उद्दीपन सहृदय हिये जिहिं थाई रस पूरि।
ते उद्दीपन भाव गनि, सकल रसनि में मूरि॥
ऋतु, सुगंध, भूषन, कुसुम, कवित, नाच, सगीत।
उपवन, उज्जल, बात सब, रस सिंगार के मीत॥
जल, दोला, पांचालिका[1], कंदुक, नेत्र निमील[2]।
द्यूत, केलि, हल्लीस[3] कों गनि उद्दीप सलील॥

वही, ५।२१२-१४।

३.

अंग सोभा भुज दृगचलन, तिय पिय के अनुभाव।
तेई होत परस्परहि, लखि उद्दीपन भाव॥

रसिकरसाल, ५।२१६

१. एक प्रकार का खेल। २. आँख मीचने का खेल, आँख मिचौनी।
३. गुल्ली-डंडा, एक प्रकार का खेल।

सोमनाथ

१.

जिहि ते उपजतु है जहाँ जिहि के थाई भाव।
तासो कहत विभाव सब समुझि रसिक कविराज॥

रसपीयूषनिधि, ११।३

२.

प्रगटत थाई भाव हैं जिनके जिन तें मित्र।
ते कवित्त अरु नृत्य मे जानि विभाव विचित्र॥

शृंगारविलास, १।८

३

थाई भावनि कौ जु बसेरौ। सो विभाव आलंबन हेरौ॥
चमकि उठौ पुनि जाहि निहारे। सो उद्दीपन कहत पुकारे॥

वही, १।१०

भिखारीदास

१.

कारन जनि विभाव अरु कारज है अनुभाउ।
विभिचारी तेंतीस ये जहँ तहँ होत सहाइ॥

काव्यनिर्णय, ४।८-६

२.

जासों रस उत्पन्न है सो विभाव उर आनि।
आलंबन उद्दीपनो सो द्वै विधि पहिचानि॥

रससाराश, १०

३.

जिहि कहियत शृंगाररस ताको जुगल विभाव।
आलंबन इक दूसरो उद्दीपन कविराव॥
बरनत नायक नायिका आलंबन के काज।
उद्दीपन सखि दूतिका सुख समयो सुख साज॥

शृंगारनिर्णय, ६–७

४.

जानो नायक नाइका, रस सिगार विभाव।
चंद सुमन सखि दूतिका, रागादिको बनाव॥
औरनि के न विभाव मे, प्रगटि कहो इहि काज।
सवके न्यारे विभाव हैं, औरो हैं बहु साज॥

सिंह विभाव भयानकहुँ, रुद्र बीरहू होइ।
ऐसी सामिल[1] रीति में, ये नेम[2] कहे क्यों कोइ॥

काव्यनिर्णय, ३।१०-१२

रसलीन

१.

थाई कारन को सु कवि कहत विभाव विशेष।
सो द्वै विधि आलंबन रु उद्दीपन अविरेष॥
उपजै थाई जाहि लहि सो आलंबन जान।
अधिक जाहि ते होत सो उद्दीपन पहिचान॥

रसप्रबोध, २७-२८

२.

रतिकारन जे कवित मे सो विभाव द्वै जान।
इक आलंबन दूसरो उद्दीपन पहिचान॥
यातें रति अवलंबई सो आलंबन होय।
रति की दीपति जाहि ते उद्दीपन है सोय॥
सो आलंबन नायिका अरु नायक जिय जान।

वही, ४६-५१

३.

आलंबन मे नायिका नायक प्रथम बखान।
सखि दूती रितु आदि अब उद्दीपन में आन॥

वही, ५७७

४.

क- देखतही जिहि नारि को नर हिय उपजे प्रीति।
ताहि कहत है नायिका जो जानत रसरीति॥
गोरी तुलित अनूप मनहरनी कमला रूप।
बानी लों अति चतुर तिहि तिय बरनत कविभूप॥

रसप्रबोध, ५४-५५

ख- उपजै जिहि नर निरखि कै नारिन ही प्रति भाव।
ताही को नायक कहैं जे प्रबीन कविराव॥

वही, ४८८

१. संमिलित। २. नियम।

रूपसाहि

१

कवितगीत रसलीन मन सुंदर तरुन प्रवीन।
मदनभीत सुवचन धनी नायक कहिय कुलीन॥

रूपविलास, ५।१

२.

उपजतु है रतिभाव चित जाके दरसन होत।
ताहि वखानत नायिका रूपसाह कवि गोत॥

वही, ६।१

३.

स्वाधिनपतिका वसि पिया तिहि कहुँ कर्यो विराम।
कहुँ रहि यह चित वही उक्ता वाम ललाम॥
अंतहु करि विश्राम पिय जवहि चित जुत आइ।
उक्ता तैं भइ षंडिता[1] देषतही दुष छाइ॥
कलह करैं पियकौं गम्रैं पछितानी जव सोइ।
कलहंतरिता[2] नाइका तवहि वषानी वोइ॥
करि संकेतहि कंत सौं ऐहैं आजु विशेषि।
सजत सुरत के साज कौं वासकसज्जा लेषि॥
पिय नहि आयौ दुष भयौ विप्रलव्ध तव सोइ।
कामकलित उतही गरी अभिसारिका सुहोइ॥
निसि विहरत पिय कहिं सुहम जात विदेसहि भोर।
सुनैं प्रवत्स्यत् प्रेयसी पियराई तन जोर॥
प्रातहि पति परदेस गौ प्रोषितपतिका तीय।
आगच्छत्पतिका भई आवत पथिमंधि पीय॥
आये पिय प्यारो घरै आगतपतिका वाम।
रहन लगे तव फिर भई स्वाधिनपतिका नाम॥

रूपविलास, ६।१–८।

जनराज

१.

जेई जिनको जगत में, थिरता उपजावंत।
तिनको कहत विभाव हैं, कवि रस ग्रंथ अनंत॥

कवितारसविनोद, १०।७

१. खंडिता। २. कलहांतरिता।

२.

सो विभाव सब रसन में, संचरै द्विधै भाँति।
प्रथम कहत आलंबने, उद्दीपन करि कांति।
आलंबन ही ते जगै, उद्दीपन सरसात।
ए दोउनोउ रसन, सब कवि बरनत जात॥

वही, १०।८-६

३.

नवल नारि नायक कहत. आलंबन शृंगार।
उद्दीपन घन-वन-सरद चंद कमल विस्तार॥

वही, १०।११

४.

गुन गभीर उदार अति केलिकला रसलीन।
रूप माधुरी कलित मद नायक जानि प्रबीन॥

वही, ११।१२

उजियारे कवि

१.

सह विभाव अनुभाव अरु सातुक संचारीन।
दई जगाइ जु वासना कहत सकल परवीन॥

रसचद्रिका, ३।४

२.

क–आन भाँति भूषन वसन वेष नाम आचार।
अरु अद्भुत लषि वचन सुनि हास विभावनुदार॥

वही, ६।४

ख–अस्त्र शस्त्र टूटे कटै पूरे लगे प्रहार।
युद्धभूमि की वस्तु लषि होतु रुद्र अवतार॥

वही, ८।४

ग–जंतु भयानक वेष रव युद्ध विजन वनधाम।
पुनि गुरु नृप अपराधमय भय विभाव उदाम॥

वही, १०।३

घ- दरस असंमत - गंध - रस अरु सपरस करि जोइ।
और गिनगिनी[1] ठौर वहु रस वीभत्स जु होइ[2] ॥

वही, ११।३

पद्माकर

१.

नवरस में जु सिंगार रस सिरें कहत सब कोइ।
सु रस नाइका नाइकहि आलंबित ह्वै होइ॥

जगद्विनोद, पद ६।

२.

जिनहि विलोकत हीं तुरत रस उद्दीपित होत।
उद्दीपन सु विभाव है कहत कविन को गोत॥
सखा सखी दूती विपिन उपवन षटरितु पौन।
उद्दीपनहि विभाव में बरनत कवि मतिमौन॥
चंद चाँदिनी चंदनहु पुहुप पराग समेत।
यों ही और सिंगार रस उद्दीपन के होत॥

वही, ३३५-३७।

३.

आलंबन सिंगार के तिय नायक निरधार।
उद्दीपन सब सखि सखा वन बागादि निहार॥

वही ६१५

४.

क- हास्य

तिहि कुरूप कूदब कहब कछु विभाव ते मानि।

वही, ६७०

ख- करुण

आलंबन प्रिय को मरन उद्दीपन दाहादि।

वही, ६७५

१. घृणास्पद।
२. शेष रसों के विभाव का विवरण रसचंद्रिका को ह० लि० प्रति के जीर्ण होने के कारण फटा हुआ है। अतएव वे अंश दुर्लभ हैं।

ग- रौद्र

आलबन रिपु रन उमड़ उद्दीपन तिहिं ठाम।

वही, ६८०

घ- वीर

जुद्धबीर को जानिये आलंबन रिपु जोर।
उद्दीपन ताको तबहि रिपुसेना को सोर[1] ॥

वही, ६८७

ङ- बीभत्स

पीब मेद मज्जा रुधिर दुरगंधादि बिभाव।

वही, ७१२

च- अद्भुत

असंभावित जेते चरित तिनको लखब विभाव।

वही, ७१७

छ- शांत

सतसंगति गुरुतपोवन मृतक समान बिभाव।

वही, ७२५

५.

सुंदर गुनमंदिर जुवा जुवति विलोकै जाहि।
कविता राग रसज्ञ जो नायक कहिये ताहि॥

वही, २८१

बेनीप्रवीन

१.

हैं विभाव द्वै भाँति के, आलंबन है एक।
उद्दीपन है दूसरो, कविजन कहत अनेक॥
आलंबन है नायिका, अरु नायक जी जानु।
जिनमें आलंबित रहत, सो स्थाई परमानु॥

नवरसतरंग, पद ३२-३३

२.

जेहि तरुनी में होत है, रूप अनुपम सोभ।
ताहि नायिका कहत हैं, लखन लगे हैं लोभ॥

वही, १

१. कोलाहल।

३.

दानी अभिमानी धनी, मनमोहन रमनीय।
नायक तरुन कुलीन सुचि, छमी काम कमनीय[1] ॥

वही, २०२

४.

जो रस को दीपति करै, ते उद्दीपन जानि।
रितु वन वागादिक सबै, कविजन कहत बखानि ॥

वही, २७७

करन कवि

१.

तह विभाव द्वै भाँति को सुकविनि कह्यो बखानि।
आलंवन है एक पुनि उद्दीपन यक जानि ॥
आलंवन मिलि होत है नवलवधू अरु नाह।
उद्दीपन उद्यान भक ससि चंदन जलवाह[2] ॥
होहिं जाहि आलँ रस ते आलंवन जानि।
जे उद्दीपन करत रस ते उद्दीपन मानि ॥

रसकल्लोल, पद ३२ ३४

प्रतापसाहि

१.

जिन ते प्रकटत जगत मे रति आदिक थिर भाव।
पावत है सु कवित्त मे तेई नाम विभाव ॥

काव्यविलास, ३-२५

२.

जाहि लखे उपजै हिये रति थाई मन माँहि।
ताहि वखानत नायिका कविजन सुमति सराँहि ॥

व्यंग्यार्थकौमुदी, १०

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

चारि भाँति को भाव है प्रथम विभाव बखानि।
थाई अरु अनुभाव पुनि सचारी उर आनि ॥

रसिकविनोद, छंद २४२

१. सुंदर। २. मेघ।

२.

जहाँ रहे थिरभाव थिर आलंबन है सोइ।
आश्रै विषै प्रकार द्वै बरनत है सब कोइ॥
आश्रै प्यारी जानिये पीतम विषै विचारि।
औरो रस बरनन विषै बुधबल सो निरधारि॥
आलंबन शृंगार के नवल नारि अरु कंत।
इनही में थिर भाव रति परगट देखि स्वतंत्र॥

वही, २४५–२४७

३.

उपजत है रति देखिके बर्द्धमान नहिं होइ।
तातें उद्दीपन इन्हें भूलि न मानौ कोइ॥
जो आलंबन में करै बर्द्धमान थिर भाव।
ते उद्दीपन कहत हैं सब सुकविन के राव॥
सखी दूतिका ये उभै दीपन कारन जानि।
नेह भरत उरदीप रति जोति बढ़ावति आनि॥
सखि सरोज दर्शाइ कै रागरागिनी गाइ।
करि ऋतु बरनन देत ये उरगति प्रीति बढ़ाइ॥

वही, २४६, २५५–५७

४.

क – हास्य रस का विभाव

वेष वचन कलपित अविधि ते विभाव जुग पाइ।

र० वि०, ४३६

ख – करुण रस का विभाव

इष्टनाश मृत इष्ट लखि ए विभाव अनुसार।

वही, ४४०

ग – रौद्र रस का विभाव

रिपु अपराधादिक जहाँ लहि विभाव इक ठौर।

वही, ४४४

घ – वीर रस का विभाव

वीर नाद विरदादि धुनि लहि रिपुकटक विभाव।

वही, ४४७

ङ – भयानक रस का विभाव

घोर दरस अपराध निज लखि भूतादि विभाव।

वही, ४५१

च – वीभत्स रस का विभाव

रक्त मांस रनभूमि उरु निंदित वस्तु विभाव।

वही, ४५५

छ – अद्भुत रस का विभाव

जहँ विभाव आचर्ज लखि सुनि विसमै[1] अति होइ।

वही, ४५८

ज – शात रस का विभाव

सज्जन संगति शास्त्रगत ये विभाव जहँ होत।

वही, ४६३

ग्वालकवि

१.

जनक जासु को मन कहैं जन्य जु कछू विकार।
ताकौ कहिये भाव है कविन कियो निरधार॥
भाव सु चारि प्रकार है कहियत प्रथम विभाव।
पुनि कहि थाई भाव कौ लिपिहौ फिरि अनुभाव॥

रसरंग, १।९-१०

२.

हेतु रूप औ बुद्धिकर रस को जो सु विभाव।
सौ द्वै विधि इक आलंबन द्वय उद्दीपन गाव॥
स्थाई भावन को जनक सो आलंबन जानि।
थाई को दीपत करे सो उद्दीपन मानि॥

वही, १।१२-१३

३.

रूपवती हूलषि लुभैं अतिप्रवीन गुनखानि।
वहुत जायका[2] दायका वहे नायका जान॥
लक्षन की प्रधान्यता श्री राधा ही माँहि।
गौन पच्छ मे जगविषै और नायका आँहि॥

वही, २।१४ और १६

१. विस्मय, अचरज। २. मजा, स्वाद।

४.

चतुर कुलीन गुनी धनी जुत पुरसत्व उदार।
सुभग बीजु छमी बली नायक ताहि उचार॥

रसरंग, ७।१

५.

जाति करे नायक हू यौ जाति केइक।
पांचालवषत दत्त कूचभार कहौ बहुरि भद्र पहचान॥
पद्मिनि आदिक चिह्न सम चिह्न उच्च जिय जान।
और सबै लक्षन वही क्रमते करौं मिलान॥

वही, ७।२-३

६.

चारु चाँदनी चंद्रमा घन विजुरी अरु मेह।
कोयल कोकिल चातकन मोरादिक सुभ गेह॥
चंदनादि सौरभ सकल त्रिविध समीर इकंत।
बागराग नृत चित्त सर षटरितु सुख सरसंत॥
इन्है आदि औरो बहुत सुंदर वस्तु समग्र।
ताते षटरितु कहति हौ आवै सब सुख अग्र॥

वही, ७।६७-६६

रसिकविहारी

१.

द्वैविध कहत विभाव, आलंबन उद्दीपन जु।
जहाँ रहै थिर भाव, है विभाव आलबन सु॥
जाहि देखि अति वेग ही रस उद्दीपन होय।
उद्दीपन सुविभाव है, बरनै कवि सब कोय॥

काव्यसुधाकर, ६।२ और ५

२.

सखा सखी दूती वन आदिक जान।
उद्दीपनहि विभाव सु, करत बखान॥
उडुगनपति[1] अरु चंद्रिका, चदन षटरितु जान।
गान तान नट वाद्य बहु, सुमन सुगंध प्रमान॥

१. चंद्रमा।

वहु प्रकार के रसन मे, उद्दीपनहुँ अनेक।
शृंगारादिक जानिये, वरने कविन्ह विवेक॥

वही, ६।६–८

नंदराम

१.

जाहि विलोकत होत है मन मो मदन उदोत।
ताहि तरुणि को नायिका कहत कविन के गोत॥

शृंगारदर्पण, १।१९

२.

गुणी धनी मानी तरुण कोटि काम कमनीय[1]।
काम कला कवि कुशल ही सो नायक वरनीय॥

वही, ५।१२

३.

क–शृंगार रस

कहत नायिका नायकहि आलंबन शृंगार।
वन उपवन पुनि सखि सखा उद्दीपन निरधार॥

शृंगारदर्पण, १०।७

ख – हास्य रस

तहाँ कुदावँ कुरूप स्वाँग सब कहत विभावै।

वही, १०।५०, पंक्ति २

ग – करुण रस

आलंवन प्रियमरन दाह उद्दीपन मानो।
है विभाव सब .... ॥

वही, १०।५२, पं० २

घ – रौद्र रस

आलंवन अरि अरि अनीक[2] उद्दीपन ठानत।

वही, १०।५५, पं० २

ङ – वीर रस

आलवन अनि अनि अलाप उद्दीपन कीज्जे।

वही, १०।५६, प० २

१. सुंदर। २. सैन्य।

च – भयानक रस

कछू भयानक चरित लखब सुविभाव बखाने।

वही, १०।६१, प० २

छ – बीभत्स रस

यहि विभाव दुरगंध पीब रक्ताति और वश[1]।

वही, १०।६२, पं० २

ज – अद्भुत रस

असंभावित चरितादि लखन सुविभाव गनोई।

वही, १०।६५, पं० २

झ – शांत रस

सतसंगति तप सब मसान[2] सुविभाव प्रमानत।

वही, १०।६७, पं० २

४.

आलंबनहि विभाव को कह्यो यथामति गाइ।
उद्दीपन सुविभाव को अब बरनौ चित चाइ॥
जाहि समागम होत है उर मे उदित अनंग।
ताको उद्दीपन कहै सतकवि सरस प्रसंग॥
सखा सखी दूती चतुर षटरितु उपवन पौन।
इनहि आदि औरौ बहुत समुझति हैं मतिभौन॥

वही, ७।१–३।

लछिराम

१.

जबहि जाहि आलंबि कै मन रस भाव।
उपजै ताहि कहत आलबन विभाव॥
भेद ग्रंथ मत कहि आलंबन सिंगार।
सकल नायका नायक रस व्यवहार॥

महेश्वरविलास, ३।५५–५६

२.

रस उद्दीपन हिअरें जाहि निहारि।
सो विभाव उद्दीपन कहत विचारि॥

१. वसा, मज्जा। २. श्मशान।

वन उपवन रागादिक षटऋतु पौन।
सखा सखी पर दूती सौरभ भीन॥
उड़गन रजनि कलाधर सुर[1] व विहंग।
इत्यादिक उद्दीपन रवनि प्रसंग॥

वही, ३।६८-७२।

३.

आलंबन के भीतर दरसन चारि।
श्रवन स्वप्न चित्र परतछ[2] ग्रंथ निहारि॥

वही, ३।५७

*

१. स्वर, संगीत। २. प्रत्यक्ष।

तृतीय अध्याय

अनुभाव [सात्विक भाव सहित]

केशव

१.

आलंबन उद्दीप के जे अनुकरण बखान।
ते कहिये अनुभाव सब दंपति प्रीति विधान॥

रसिकप्रिया, ६।८

२.

स्तंभ स्वेद रोमांच सुरभंग कंप वैवर्न्य।
आँसू प्रलय बखानिये आठो नाम अनन्य॥

वही, ६।१०

चिंतामणि

१.

इति करज अनुभाव गनि ए कटाच्छ दै आदि।
मधुर अंग ईहो कहै, सहृदय सुखद अनादि॥
जे पुनि थाई भाव को प्रगट करै अनयास।
ताहि कहत अनुभाव हैं सब कवि बुद्धि विलास॥

कविकुलकल्पतरु, ६।१-२

तोष

१.

मुखरुख चखनि सुभाइ लखि प्रगटति ही की बात।
ताहि कहत अनुभाव सब जिनकी मति अवदात[1]॥

सुधानिधि, छुद १०

२.

अनुभावहि में होत हैं आठ भाँति के भाव।
ताको सात्विक कहत हैं, जे प्रबीन कविराव॥

१. स्वच्छ, प्रांजल।

स्वेद स्तंभ स्वरभंग रोमांच विवर्नहि जानि।
अश्रु प्रलय पुनि कंप गनि आठौ भाव प्रमान।

वही, छंद ३८८-८६

मतिराम

१.

जिनते चित रतिभाव को आछो अनुभव होय।
रस सिंगार अनुभाव तिहि वरनत कवि सव कोय॥
लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु हास भाव धृति मोद।
इनते प्रगटत भाव रति बरनहि सुकवि विनोद॥

रसराज, ३०६-३१०

२.

ते अनुभावै जानियो, जे है सात्विक भाव।
रसग्रंथनि अवलोकि कै बरनत सब कविराव॥

वही, ३१३

३.

स्तंभ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप वैवर्ण।
आंसू औरो प्रलय कहि, आठौं ग्रंथनि वर्ण॥
जृंभा कौं कवि कहत हैं नवयों सात्विक भाव।
उपजे आलस आदि तें, बरनत सब कविराव॥

वही, ३१४ और ३३६

कुलपति

१.

थिर भावनि को और को प्रगटें ते अनुभाव।
वचन चितैवो वक्र विधि अरु जे सात्विक भाव॥
आलिगन चुंवन जिते ते सब हैं अनुभाव॥

रसरहस्य, ३।१२, १६

देव

१

जिनको निरखत परस्पर, रस को अनुभव होइ।
इनहीं को अनुभाव पद, कहत सयाने लोइ॥
आपहि ते उपजाय रस, पहिले होंहि विभाव।
रसहि जगावें जो वहुरि, तो तेऊ अनुभाव॥

आनन, नयन-प्रसन्नता, चलि चितौनि मुसक्यानि।
ये अभिनय शृंगार के, अंग भंग जुत जानि॥

भावविलास, विलास १, पृ० १४

२.

भाव जासु ते जानिए, सो कहिये अनुभाव।
भुज विक्षेप, कटाक्ष और भौहे मटक[1] मुसकाव॥

शब्दरसायन, प्रकाश ३, पृ० ३४

३.

थिति विभाव अनुभाव तें न्यारे अति अभिराम।
सफल रसनि मे संचरै, संचारी कउ नाम॥
ते सारीर रु आंतर, द्विविध कहत भरतादि।
स्तंभादिक सारीर अरु, आंतर निरवेदादि॥
आठ भेद स्तंभादि के, तिनकौ सात्विक नाम।
तेई पहिले बरनिये, सरसरीति अभिराम॥

वही, विलास २, पृ० २१

कुमारमणि भट्ट

१.

अनुभविये रस भाव जिहि, तेई कहि अनुभाव।
भुज उतछेप कटाच्छ हास तबु मन वचन सुभाव॥
कायिक, सात्विक, मानसिक, त्यों आहार्य[2] विचारि।
कहे सबै अनुभाव है जानि लेहु विधि चारि॥
कटाच्छादि कायिक कहे, हृदय जु सात्विक कार्य।
आनंदादिक मानसिक, स्वांग कहौ आहार्य॥
भुज आच्छेप कटाच्छ हस तिय के हैं अनुभाव।
ते निरखत नायक, हियें गनि उद्दीपन भाव॥

रसिकरसाल, ४।११२–११५

२.

क – चित्त सत्वगुन को गहै प्रानिनि में वह आइ।
प्रान रचत तन छोभ तहँ सात्विक भाव गनाइ॥

वही, ४।६८

१. इशारा। २. वेषभूषा संबंधी।

ख – स्तंभादिक जे आठ विध, ते शारीर विचारि।
यद्यपि सात्विक को आंतरभाव है, पै शरीर तें प्रगट होत, यातें शारीर हैं।

वही, ४।२ (व्याख्या सहित)

३

क – शृंगार रसानेभाव

लहि प्रसाद दृग, मधुर वच, धृत प्रमोद, मृदु हास।
अनुभविये शृंगार रस वहुविध अंग विलास॥

वही, ४।११७

ख – हास्यरसानुभाव

विकृत दृष्टि, मुख, गमन लखि विकृत नाम, वच, वेष।
विकृत हँसी लहि, हास्य रस अनुभव रचौ विशेष॥

वही, ४।.२०

ग – करुणरसानुभाव

मोह रुदित, उरघात छितिपात प्रभृति दुख बात।
अनुभविये रस करुन तहँ विधि निंदा उतपात॥

वही, ४।१२२

घ – रौद्ररसानुभाव

भुज हथ्यार आच्छेप लहि, भ्रकुटि कंप रिस[1] भाव।
अधर दस कर मलन हरु[2] गनत रौद्र अनुभाव॥

वही, ४।१२४

ङ – वीररसानुभाव

लहि सौरज, धीरज, दया, धर, उछाह परभाव।
वैरि निरादर, बिनय, धृति, वीर रसहिं अनुभाव॥

वही, ४।१२६

च – वत्सलरसानुभाव

सिर चुवंन सुत अंग संग दरस परस अभिलाष।
वत्सल मे दृग जल प्रभृति अमुभावहिं को भाष॥

वही, ४।१३०

१. क्रोध। २. प्रभृति।

छ – भयानक रसानुभाव

सिर दृग कर पग कंप लहि तालु कंठ मुख सोख।
भीति रीति अनुभवत है भय रस में परिपोष॥

वही, ४।१३२

ज – वीभत्सरसानुभाव

मुख दृग नाक सकोरिबौ नैन घूमिबौ लेख।
तुरत गमन तें अनुभवत, रस वीभत्स विशेष

वही, ४.१३४

झ – अद्भुत रसानुभाव

साधुवाद, उल्लास, दृग, लहि, प्रसाद गतिरोध।
तन रुमंच सुरभंग तें कीजे अद्भुत बोध॥

वही, ४।१३६

ञ – शांतरसानुभाव

जग अनित्यता, त्याग, मति, गुरु उपदेश प्रचार।
कहे शांत अनुभाव है, वेदांतादि विचार॥

वही, ४।१३८

सोमनाथ

१.

दरसावे परकास रस सो अनुभाव बखानि।

रसपीयूषनिधि, १।१६

२.

भाव सु द्वै विजि उर में आनौ। अंतरु अरु सारीरिक मानौ।
अंतर के थाई संचारी। और जानि सारीरिक भारी॥

वही, १।६

भिखारीदास

१.

कहूँ क्रिया कहुँ वचन ते, कहूँ चेष्टा देखि।
जी की गति जानी परै, सो अनुभाव विशेखि॥

रससरांश, छद ११

२.

तदपि हाव हेला सफल, अनुभावहि की रीति॥

वही, छंद ३५१

३.

कारन जानि विभाव अरु, कारज है अनुभाव।

काव्यनिर्णय, ४।८

रसलीन

१.

जो थाई को आनि कै प्रगट करै अन्यास।
सोई है अनुभाव यह बरनत बुद्धि निवास॥

रसप्रबोध, २६

२.

रत्यादिक थिरभाव के कारन जान विभाव।
कारज है अनुभाव अरु सहकारी चरभाव॥
प्रगटत विरह विभाव पुनि कछु प्रगटत अनुभाव।
अति प्रगटत हैं आइ पुनि तन अनुभाव चरभाव।

वही, ३१–३२

३.

जो थायी रस बीज विधि मानस चित छित माँहि।
ताको अंकुर जो कछू सो थाई कहि वाहि॥
अवसर सम उपजावने सरसावत जल रूप।
अलिवन उद्दीपन हियो जन विभाव अनुरूप॥
अनुभावहु तरु प्रगट करि जानि लेहु यह बात।
व्यभिचारी हैं फूल सौ छिन छिन फूलत जात॥

वही, ९–११

४.

कहि विभाव को कहत हौं अब अनुभाव प्रकास।
जो हिय ते रतिभाव अनु[1] प्रगट करै अन्यास॥
कटाक्षादि सो चारि विधि अपने मन पहिचानि।
तिनि कों कवि यह भाँति सो बरनत हैं जिय जानि॥
कायक इक सो जानिये मानस दूजो होइ।
आहारज है तीसरो चौथो सात्विक जोइ॥
कर की गति आदिक सोई कायक मान विसेखि।
मन को मोद प्रगट किये सो मानस अविरेखि॥

१. पश्चात्।

नृत्त समाज बनाव ते कुसन गोपिका ज्ञान।
सो आहारज जानिये बुधजन करत बखान॥
बहुरो सात्विक है सोई स्वेदादिक ठहिरात।
इन भावन के भेद ये चारि जानि अवदात॥
तन विभचारिन विछति है ये सब सात्विक भाव।
वाई परगट करन हित गने जात अनुभाव॥
नारी औ नर कहत हैं जो अनुभाव उदोत।
ते वै दूजे और कों नित उद्दीपन होत॥

रसप्रबोध, ६७०–६७७

५.

सम सँजोग सिंगार की इहाँ कहीयत हाव।
अनुभव जानि विशेषि अरु ये सामान्य सुभाव॥
जहाँ बचन क्रम चेष्टा बरनत हैं कवि लोइ।
सो अनुभाव रु हाव है तहाँ भेद ये जोइ॥
जो रतिभाव प्रगट करै सो अनुभाव बखान।
रति बढ़ि बहै सिंगार पुन हाव होत है आन॥
बहुत हाव कछु हेत लहि होत नरन में आइ।
बरने सहज सुभाव लखि नारिन में ल्याइ॥

वही, ६८२-६८५।

शिवनाथ

१.

कविहि भाव अनुभाव कवि अस्थाई परमान।
व्यभिचारी सात्विक तथा पंच भाव ये जान॥

रसवृष्टि, १३।२

२.

आलंबन अस्थान के उद्दीपन गुण जोइ।
सो अनुभाव बखानिए प्रेम परस्पर होइ॥

वही, १३।७

३.

भाव मध्य सेवन कृपा दया धर्म सु बिनीत।
कर्म क्रिया शुचि दीनता दान ध्यान प्रति प्रीति॥

छल विहीन पोषण भरण धरण धीर शिवनाथ।
परहित सात्विक भाव ये श्रवण सुखद पति गाथ॥

वही, १३।१३–१४

जनराज

१.

थिर भावन कों और कों जे प्रगटावत आनि।
तिनको कवि पंडित कहे, रस अनुभाव वषानि॥
बोलन चलन चितौनि पुनि पुनि इन्हें आदि हैं और।
आलंगन चुंबन जिते अनुभावन के वीर॥

कवितारसविनोद, १०।१४–१५

२.

अनुभावहि जिहाँ जिहाँ अति वढ़े, तिहाँ स्वाति कहे जाय।
ताके भेद सु आठ हैं, कवि जन गहे गिनाय॥
स्तभ स्वेद रोमांच पुनि कंप होत सुर भंग।
आँसू प्रलय विवर्न ए आठों स्वातिक अंग॥

वही, १०।१७–१८

उजियारे कवि

१.

क – हास्य रसानुभाव

नायक मुख सकोरिबो दात निकासिवौ कपोल फरकायबो आँखि मिचकाइवो तफारिकै देखिवौ इन आदि और हू है।

रसचंद्रिका, ६।६ (वृत्ति)

ख – रौद्ररसानुभाव

वैरी कै देषिवो ओ ललकारिवो इन आदि के औरै हू है।

वही, ८।४ (वृत्ति)

ग – वीमत्सरसानुभाव

आनन लोचन सकुरिवो ना सामुष ढकि जोइ।
पाइ परत मलिनागलनि[१]···· वीमत्स ···। सजोइ॥

सव अग दहिवो अरु थूकिवो इन आदि और हू है।

वही, ११।५ (वृत्ति)

१. ह० लि० प्रति की जीर्णता के कारण इतना अंश पढ़ा नहीं गया।

घ - अद्भुतरसानुभाव

सपरस ग्रहन हुलास पुनि वाह वाहु वहु चाह।
रोम हरष गदगद वचन इनि अद्भुत[१] ... ॥

इकटक देखिवे को आदि के और हू हैं।

वही, १२।११। (वृत्ति)

पद्माकर -

१.

जिनही ते रति भाव को चित में अनुभव होत।
जे अनुभाव सिंगार के बरनत है कवि गोत॥
सात्विक भाव सु हाव धृत आनंद अंग विकास।
इनही ते रतिभाव को परगट होत विलास॥

जगद्विनोद, ३६२–३६३

२.

अतरंग अनुभाव मे आठहु सात्विक भाव।
जृंभा नवम बखानही जे कवीन के राव॥

—वही, ३६७

३.

हास्य रस—मंद, मध्य और उच्च स्वर से हँसना।

करुण रस—रोदन, महीपतन आदि।

रौद्र रस—भृकुटिभंग, चेहरे का आरक्त होना और अधरदंश।

वीर रस—अंगों का फड़कना, आँखों का लाल होना आदि।

भयानक रस—कंप आदि।

बीभत्स रस—नाक मूँदना, तन कंप, रोएँ का खड़ा होना आदि।

अद्भुत रस—वचनों को रचकर बोलना, कांपना और रोमांच।

शात रस—रोमांच आदि।

वही, ६७१,६७६,६८१,६८८,७१३,७१८ और ७२६ (पूर्वार्द्ध)

२. इस अंश का भी पढ़ना, अशक्य है।

बेनी प्रवीन

१.

विषै वासना ते कछू, उपजै चित्त विकार।
ताही सों सब कहत है, भाव कवित करतार॥
हेत भाव अनुभाव हैं सात्विक आठ प्रकार।
संचारी तैंतीस हैं, कीन्हों कविन विचार॥
जिन भावन ते जानिये, रस को अनुभव होइ।
कृपा कटाक्षादिक वचन, अनुभावहि मे जोइ॥

नवरसतरंग, २८४–२८६

२.

तन में आपुहिं तें प्रगटि मन को आवै बात।
अनुभावहि के अंग हैं, ते सात्विक विख्यात॥
स्तभ स्वेद रोमाच सुर भंग कंप पहिचानि।
विवरन आँसू अरु प्रलै, जृंभा सहित बखानि॥

वही, २८९–२९०

करनकवि

१.

रस अनुकूल विकार कौ भाव कहत कवि गोत।
इक मानस सरीर इक द्वैविध होत उदोत॥
थाई औ सचारियौ दुविध मानसिक मानि।
कहि विकार सारीर सब सात्विक भाव बखानि॥

रसकल्लोल, छं० ८–९

२.

क – शृंगार

वंक विलोनि आदि है ते सब है अनुभाव।

वही, छं० ३७

ख – हास्य

फुल्ल कपोलनि आदि है ते अनुभाव वषानि।

वही, ४८

ग – रौद्र

हाथ मीड़िबे आदि है ते सब है अनुभाव।

वही, ५७

घ – भयानक

पन्नगवाध विभौ[1] जहँ कंपादिक अनुभाव।

वही, ६८

ङ – वीभत्स

कहत थूँकिबे आदि है ते सब है अनुभाव।

वही, ७१

च – अद्भुत

माया जहाँ विभाव है, रोमादिक अनुभाव।

वही, ७४

छ – शांत

सतसगादि विभाव जहँ छमा आदि अनुभाव।

वही, ७६

ज – वीर

सौर्जादिक अनुभाव है धैर्जादिक संचारि।

वही, ६१

३.

कंप स्वेद असुवा प्रलय विवरन अरु सुरभंग।
कंपादिक रोमाच ए आठौ सात्विक अंग॥

वही, १५०

प्रतापसाहि

१.

जे प्रतीति रस की करत ते अनुभाव प्रमाण।
भुज उछेप कटाछ वच आलिगन ये जान॥

काव्यविलास, ३,२६

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

उरगत थाई भाव को जातें अनुभव होइ।
ताहि कहत अनुभाव हैं भरत मतो कवि जोइ॥

वैन नैन अरु, अंग सब मनविकार अनुकूल।
ईहा प्रगटत आपनी सो अनुभव को मूल॥

रसिकविनोद, २७२–२७३

ग्वालकवि

१.

मन विकार उपजनि जु है जिहि करि जानि जाइ।
सो अनुभाव उचारही ग्रंथन के समुदाय॥
इक इक रस के होत बहु लिषों रसन के संग।
द्रिष्ट मुष्य अनुभावु है वोधे तुरत प्रसग॥

रसरग, १।३५–३६

२.

सचारी सो द्विविध है तनज मनज करि पाठ।
मन सहाय संबंध सो तनभव सात्विक आठ॥

वही, १।३८

३.

पाँचो इद्रिन जोग तें इकइक प्रगटत जाँच।
चक्षु श्रोत्र पुन घ्रान कहि रसना त्विक ये पाँच॥
पाँच पाँच विधि ये प्रगट होत जु सात्विक भाव।
इमि चालिस विधि मै किये नूतन विधि वरनाव॥

वही, १।४१-४१

४.

कहुँ आदि कहुँ अत मैं नीद अमल के जान।
काम सवंधादिकन तैं उपर जत जृंभा मान॥
छिन इक मुख को खुलि रहन मिटैं विकार सुहाय।
ज्रंभा ताकों जानिये वस्तु तें जुहो लिषाय॥

वही, १।६३–६३

रसिकविहारी

१.

तेइ कहावत हैं अनुभाव, वरनत जिनको सात्विक भाव।
स्तभ,स्वेद रोमांचिहि जानो, पुनि स्वरभंग कंप अनुमानो॥
विवरन, आँसू, प्रलय लखाव, ये आठो हैं सात्विक भाव।
अंतरंग अनुभावहि माँह, इने बखानत है कवि नाँह॥

काव्यसुधाकर, ७।१-२

२.

जनित स्वभाव सु तियन के, स्वसिंगार के काम।
हाव बखानें ताहि को, सुकवि सबे अभिराम॥
सो अनुभावहि में लखो, लीलादिक दश हाव।
तिने संयोग शिगार के, बरनत हैं कविराव॥

वही, ७।२१-२२

चंद्रराम

१.

जिनसों दंपति के हिये रति को होत विकाश।
ते अनुभाव सिंगार के पंडित करत प्रकाश॥
स्तंभ कंप स्वरभंग अरु आँसू विवरन जान।
स्वेद पुलकता लीनता सात्विक आठ प्रमान॥
अभ्यांतर अनुभाव में आठौ सात्विक होत।
नौम कहत जृंभा सुकवि जे जग सुमतिनि सोत॥

शृंगारदर्पण, ८।१-३

२.

लीलादिक दस हाव जे अनुभापहि में जानु।
यहाँ प्रगट सिंगार में दंपति अंग बखानु॥

वही ८ ३३

लछिराम

१.

अनुभव मन जाही तें रुख रति भाव।
ते सिंगार के अनुभव कह कवि राव॥
आनंद अंग धृति सांतिक भाव स्वभाव।
प्रकट होत रति भाव सुइन विकसाव॥

महेश्वरविलास, ४।३०–३१

२.

स्तंभ स्वेद रोमांचक अरु स्वर भंग।
कंप वैवरण आँसू प्रलय उमंग॥
सात्विक आठो अंतरगत अनुभाव।
जृंभा नवम बखानत सब कविराव॥

वही, ४।३३–३४

चतुर्थ अध्याय

संचारी भाव

केशव

१.

भाव जु सबही रसनि में उपजत केशवराय।
बिना नियम तिन सों कहैं व्यभिचारी कविराय॥

रसिकप्रिया, ६।११

चिंतामणि

१.

जे विशेष ते थाइ को अभिमुख रहे बनाइ।
ते संचारि वर्णिये कहत बड़े कविराइ॥
रहत सदा थिरभाव मै प्रकट होत इहि भाँति।
ज्यों कल्लोल[1] समुद्र में यों संचारी जाति॥

कविकुलकल्पतरु, ६।८-९

२.

धनविद्या रूपोद्भव आसव जोवन जात।
उपजत है मद भाव तित करति अलस गत बात॥

वही, ६।५२

३.

प्रानत्याग कहियत मरन सु तौ प्रगट जग माँहि।
संग्रामादिक छाड़ि के और वरनन मे नाहि॥
जो वह कबहू बनिये तौ ताको उद्दोत।
शृंगारादि प्रबंध में मरन[2] न वरनन जोग॥

वही, ६।४९-५०

तोष

१.

उतकंठा उनमाद उग्रता आलस मति धृति।
नीद मोह मद ग्लानि हर्ष चिंता संका स्मृति॥

१. तरंग। २. मद और मरन के लक्षणो की मौलिकता द्रष्टव्य है।

त्रपा[1] त्रास आवेग स्वप्न श्रम व्याधि चपलता।
ईर्षा तर्क अमर्ष विखाद दीनता पुनि जड़ता॥
निर्वेद अवहित्था गर्व पुनि अपसमार[2] मृतु कठिनतहि।
ये तेतीस चरभाव के नाम सकल कवि देत कहि॥

सुधानिधि, ४७१, पृ० १६०

मतिराम

१.

वरनि नायका नायकनि, रच्यो ग्रंथ अभिराम।
लीला राधारमन की सुंदर जस अभिराम[3]॥

रसराज, ३

कुलपति

१.

संचारी जेहि साथ ह्वै बहुत बढावै दाव।
'अरु सब रस में संचरै ··· ··· ··· ··· ···॥

रसरहस्य, ३।१२–१३

२.

चित्त विकलता मोह है, स्मृति सुधि करि होय।
धृति संतोष बखानिये, लाज सकुचिबो सोय॥
जहाँ कछु काम न करि सके, इंद्रिय निद्रा सोय।
अमर्ष सो कहिये जहाँ, क्रोध अधिक थिर सोय[4]॥

वही, ३।२२–२३,२७

देव

१.

भरतादिक सत कवि कहैं विभिचारी तेंतीस।
वरनत छल चौतीस यों, एक कविन के ईस॥

भावविलास, विलास २, पृ० ५

१. लज्जा। २. वेहोषी।

३. मतिराम ने भानुमिश्र की रसमंजरी के अनुकरण पर संचारी भावों का पृथक् उल्लेख नहीं किया है। आचार्यत्व की दृष्टि से यह कमी चिंत्य है।

४. कुलपति के इन संचारी भाव लक्षणो पर साहित्यदर्पण की छाप नितांत स्पष्ट है।

२.

विप्रतिपति विचार अरु संशय अध्यवसाइ।
वितरफ चौबिधि जानिए भूचलनादिक भाइ॥

वही, वि० २, पृ० ५७

कुमारमणिभट्ट

१.

रति प्रभृतिक थाईनि में उपजत मिटत सुभाव।
यातें संचारी कहे निर्वेदादिक भाव॥

रसिकरसाल, ४।२५

२.

विभावादि परिपोष तें थाई कहे प्रधान।
जहँ न तोष तहँ थाइ ये संचारी रस आन॥
ज्यों थाई तिय पुरुष के प्रीतहि रति निरधारि।
यहै पुत्र गुरुदेव नृप सौति प्रीति संचारि॥
ज्येष्ठ प्रभृति में हास त्यों शोक अचेतन माह।
पुत्रादिक पर क्रोध कहि कायर प्रभृति उछाह॥
मृगछौनादिक नेह त्यों वार प्रभृति भय लेखि।
हिंसक में घिन शम खलनि, ज्ञानी विस्मय पेखि॥

रसिकरसाल, ४।६४–६७

सोमनाथ

१.

कहे तीस अरु तीन ए संचारी समुझाइ।
नवहूँ रस में संचरत ह्वै के संग सहाइ॥

शृंगारविलास, १।१६

२.

क - असूया

पर को भलो न लखि सके, सु वह असूया जानि।

वही, १।२२

ख - शंका

वस्तु चाहती हानि भय ताकों संक बताय।

रसपीयूषनिधि, १।२२

ग - चिंता

चिंता प्रिय को ध्यान।

वही, १।२४

घ - हर्ष

उर आनंद सुहर्ष है।

वही।१।२५

ङ - धृति

धृति सतोष अपार[1]।

वही, १२६

भिखारीदास

१.

विना नियम सव रसनि में उपजै थाई ठाउ।
चर विभिचारी कहत हैं अरु संचारी नाउ॥

रससाराश, ४८३

२.

विभिचारी तेंतीस ये, जहँ तहँ होत सहाइ।
क्रम ते रचक अधिक अति प्रगट करै थिर भाइ॥

काव्यनिर्णय, ४ ६

३.

जे न विमुख हैं थाय के अभिमुख रहैं वनाय।
ते व्यभिचारो वरनिये कहत सकल कविराय॥
रहत सदा थिर भाव में प्रगट होत एहि भाँति।
ज्यों कल्लोल समुद्र मे त्यों सचारी जाति॥

काव्यनिर्णय, ४।३६-४०

४.

क – निद्रा

निद्रा को अनुभाव जमुहैवो। आलसादि ते नैन मिलैवो॥

रससाराश, ४८५

१. उक्त सारे लक्षणो पर भानुदत्त की रसतरंगिणी का प्रभाव ही नही लक्षित है प्रत्युत उनका अविकल अनुवाद प्रस्तुत कर दिया गया है।

ख - ग्लानि

ग्लानि जानि जहँ बल न बसावै । दुरबलता असहन दुख ल्यावै ।।

वही, ४८६

ग - श्रम

श्रम उत्पत्ति परिश्रम कीन्हे । थके पसीना प्रगटे चीन्हे ।।

वही, ४८७

घ - धृति

धृति संतोष पाइ बिनु पाए । विधि गति समुझि धीर जहि धाए[1] ।।

वही, ५००

रसलीन

१.

बरने तनचर[2] भाइ अब बरनो मनचर[3] भाइ ।
जे थाइन के होत है नित सहचारी आइ ।।
रहत सदा थिर भाव में प्रगट होत यह रूप ।
जैसे आनि सनुद्र ते निकसत लहर अनूप ।।
फिरत रहत सब रसन में इनकौ यहे सुभाव ।
जा रस मै नीको जु है तैसो तहाँ बनाव ।।
पहिलै दै निर्वेद को थाई माहि गनाइ ।
पुनि अब राख्यौ आनि यह व्यभिचारिन में ल्याइ ।।
तत्व ज्ञान विरहादि ते जहँ जग को अपमान ।
और निदरिबो आपनो सो निरबेद प्रमान ।।
निज रस पूरन हेतु लौ थाई जानि उदोत ।
गये रौद्र रस मै वहै व्यभिचारी पुनि होत ।।
त्यौही चिंता आदि जे धरे दसा दसमाहिं ।
गये और ठौरन बहै विभचारी ह्वै जाहिं ।।

रसप्रबोध, ७९४–८००

१. दास के ये लक्षण चलती भाषा में होने के साथ ही परंपरागत ग्रंथो से सर्वथा अप्रभावित हैं ।

२. शारीरिक । ३. मानसिक ।

२.

क - निरवेद

ध्यान सोच आधीनता आँसू स्वास उसास।
उठि चलिबो सरवस तजी ये अनुभाव प्रकास।।

रसप्रबोध, ८०१

ख - ग्लानि

रति गतादि ये निवलता नहिं सँभार सो ग्लानि।
छीन वचन कंपादि ते जान लेत है जान।।

वही, ८०४

ग - दीनता

दुखदारद विरहादि ते होत दीनता आनि।
मन सो वच हाहा करत तन मलीनता जानि।

घ - सका

निज ते कछु औगुन भये कै चवाव कछु देखि।
उपजै संका जानिये इत उत लखन विसेखि।।

वही, ८१०

ङ - त्रास

त्रास भाव प्रगटै सदा घोर दरस सुधि पाइ।
स्तंभ कंप धकधक हुते तन मैं होत जनाइ।।

वही, ८१२

च - आवेग

अरि दरसन उतपात लहि मित्र सत्रु जहँ होइ।
सो आवेग खेलन तपन विभ्रम भ्रम ते होइ।।

वही, ८१५

शिवनाथ

१.

सब ही रस को भाव पुनि प्रगट होत बिन नेम।
तासों व्यभिचारी कहै कवि शिवनाथ सप्रेम।।

रसवृष्टि, १३।१०

१.

जनराज

सब ही रस मैं संचरै संचारी तैंतीस।
तिनके लक्षन लक्षि करि वर्नत है कवि ईस॥

कवितारसविनोद, १०।२७

२.

क - निर्वेद

ल० – जगसुष तै जु उदासता उपजावत सो निरवेद।
उदा०–रे मन सुमिरि गोविंद ज्यों, परै न जम की षेद॥

वही, १०।२६

ख - ग्लानि

ल० – बुरी वस्तु कछु देखि सुनि मन में होति गलानि।
उदा०–मंदोदरी पिय लोथ लषि, धिक धिक निज जिय मानि॥

वही, १०।३०

उजियारे कवि[1]

१.

क - चिंता

चिंता कहितु ध्यान सह सुमिरनरूप न होइ।
यातै सुमृति जुदी कहत कविकोविद सब कोइ॥

रसचंद्रिका, १५।४४

ख - मोह

मोह कहत अविवेक सह मोहनरूप सु आइ।
करिबो अरु करिबो जहाँ समझि न परे सुभाव॥

वही, १५।४७

ग - व्रीडा

मनभांमती क्रियानि कौ जह सकोच जु होइ।
ता सह व्रीडा कहत है कवि कोविद सब कोइ॥

वही, १५।५६

१. संचारी भाव का कोई सामान्य लक्षण इन्होंने प्रस्तुत नहीं किया है।

१.

पद्माकर

स्थाई भावन कों जिते अभिमुख रहें सिताब।
जे नव रस में संचरें ते सचारी भाव॥
स्थाई भावन में रहत या विधि प्रगटि बिलात।
ज्यों तरंग दरियाव में उठि उठि तितहि समात॥
थिर ह्वै थाई भाव तव पूरन परि रस होत।
थिर न रहत रसरूप लौ संचारिन के गोत॥
थाई संचारिन को हैं इतनोई भेद।
अब संचारिन के कहत तैंतिस नामनि बेद॥

जगद्विनोद, ४६६–४७२

बेनीप्रवीन

१.

सकल रसन में होत हैं, ते विभिचारी भाव।
येऊ थाई भाव को, जाहित करत प्रभाव॥
थाई भावहि में वसै, उपजै बारहि बार॥
ज्यो कल्लोल समुद्र में त्यौ इनको निरधार॥

नवरसतरंग, ३०६–३१०

करन कवि[१]

क - निरवेद

ग्लानि विपति ते ईरषा करे जु जिय को षेद।
जहँ तु निजो निदरिवो[२] ताहि कहत निरवेद॥

रसकल्लोल, ८३

ख - ग्लानि

आधिव्याधि रत्यादिश्रम इनते वल की हानि।
कवि कोविद ए सकल पुनि तासो कहत गिलानि॥

रसकल्लोल, ८४

१. उजियारे कवि जैसी स्थिति करन कवि की भी है।
२. अनादर करना।

ग – असूया

होत असूया और को जहाँ न भलो सोहात।
गरब ईरषा क्रोध पुनि ए सब उपजत गात॥

वही, ८६

घ – आलस

मदनविथादिक रति जगे जहाँ उठो नहि जाइ।
ताही सो सब कहैं आलस पंडित राइ॥

वही, ६५

प्रतापसाहि

१.

सकल रसन में संचरै ते संचारी भाव।
पुष्ट करत रस को सदा कहत सु क़वि मन भाव॥

काव्यविलास, ३।२७

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

नवहू रस में सचरै ते संचारी भाइ।
जैसे लहरि समुद्र में देख परे छिप जाइ॥

रसिकविनोद, २६३

ग्वाल कवि

१.

सब रस में विचरयो करें संचारी सो जान।
विभचारी हू कहत हैं याही को गुनवान॥
संचारी सो द्विविधि हैं तनज मनज करि पाठ।
मन सहाय संबंध सों तनभव[1] सात्विक आठ॥

रसरंग, १।३७–३८

२.

पाँचो इंद्रिन जोग तें इकइक प्रगटत पाँच।
चक्षु श्रोत्रं पुन घ्रान कहि रसना त्विक[2] में पाँच॥
पाँच पाँच विधि ये प्रगट होत जु सात्विक भाव।
इमि चालिस विधि मै किये नूतन विधि बरनाव॥

वही, १।४१–४२

रसिकविहारी

१.

संचारी तिहि भाषहिं, कवि मतिधाम।
रहे रसन में मिलिके, जो सब ठाम॥

काव्यसुधाकर, ८।१

१. शारीरिक। २. त्वचा, चमड़ी।

२.

अमरप कहुँ विवाद को भाषैं, उत्सुकता उत्कंठा को।
आकृतिगोपन को अवहित्थ जु, नाम उलटि वरनैया को॥

वही, ८।४

नंदराम

१.

सपति सदा सनमुख रहै थाई भावन आनि।
नौहू रस में संचरै संचारी ते जानि॥
याही विधि प्रगटत दुरत थाई भावन माह।
वारि वीचि[1] लौं जानिये वरनत कवि कविनाह॥
रस मे थिर थाई रहत संचारी थिर नाँहि।
थाई संचारीन को इतनी भेद सदाहि॥

शृंगारदर्पण, ६।१–४

लछिराम

१.

थाई भावन अभिमुख रहि सद साज।
संचारी सब रस मैं विहरि विराज॥
गुप्त प्रगट यों थाई भावन वीच।
ज्यों तरग सर उठिकै आवत नीच॥
थाई भाव सुथिर तहँ रस अवतार।
थिर न रहत संचारी रसवत चार।
थाई संचारिन यों भेद सुमानि।
निरवेदादिक वरनत मत अनुमानि॥

महेश्वरविलास, ४।११०–१३

२.

क – ग्लानि

छुधा प्यास के रति श्रम सिथिल सरीर।
गनि गलानि संचारी बुध कवि मीर॥

वही, ४।१२३

ख – असूया

परसुख लखि मन जाके इरखा शेष।
ताहि असूया वरनै कवि निरदोष॥

वही, ४।१३०

ग – मद

जोवन धन अंग आपे और न त्राप।
विज्जुवलित वनमाली कहर कलाप॥

वही, ४।,३२

*

१. तरंग

पंचम अध्याय

स्थायी भाव

केशव

१.

रति हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान।
भय निंदा विस्मय सदा, थाई भाव प्रमान।

रसिकप्रिया, ६।६

२.

सब ते होय उदास मन, बसै एक ही ठौर।
ताही सों सम रस कहत, 'केशव' कवि सिरमौर॥

(राधिका जू को समरस यथा—)

देखे नहीं अरविंदनि त्यों चित चंद की आनंद कंद निकाई।
कामिनि काम कथा करे कान न ताके त्रिधाम की सुंदरताई॥
देखि गई जब तें तुमको तब ते कछु वाहि न देख्यो सुहाई।
छाडेगी देह जु देखे बिना अहो देहु न कान्ह कहूं ह्वै दिखाई॥

रसिकप्रिया, १४।३७-३८

चिंतामणि

१.

मन विकार कहि भाव सों वरन बासना रूप।
विविध ग्रंथ करता कहत ताको रूप अनूप॥
जो नहि जाति विजाति सों होइ तिरसकृत रूप।
जब लग रसु तब लग सुथिर थाई भाव अनूप॥
काव्योचित रामादि सुख-दुःखाद्यनुभव जात।
मन विकार संचारि तजि यह थाई थिर बात॥
पावै ल्यावै आपने रूपहि और अखेद॥
जो विरुद्ध हू भावननि रहि विच्छेदक भेद॥
सो थाई है समुद सो जब लगि रस आस्वाद।
तब लगि यह वह रहत है जो थाई अविवाद॥

कविकुलकल्पतरु, ५।५०,५२-५५

२.

प्रथमहि रति अरु हास पुनि वहति सोक गन क्रोध।
पुनि उत्साह जुगुप्स पुनि विस्मय सम भय बोध॥

वही, ५।५६

तोष

१.

प्रेम एक रस में जहाँ प्रगट विकार जु होइ।
ताको थाई भाव कहि बरनत कवि सब कोइ॥

सुधानिधि, छं० ११

२.

प्रीति हासि अरु सोक पुनि क्रोध उछाह बनाव।
भय निंदा विस्मय भगति थाई भाव गनाव॥

वही, ५३७

३.

पिय तिय सिसु सिसु पितु सुतहि सुत पितु जानि विवेक।
यहि विधि प्रीति विचारिये जग मे रीति अनेक॥
थाई भाव जहाँ दया होत कौनहू भाइ।
तहाँ कहत वात्सल्य रस करुना रसहि जनाइ॥

वही, ५३८-३९

४.

घिन होत लखि सुनि मलिनता वीभत्स को यह हाल है।

वही, पृ० १५१

मतिराम

१.

जो बरनत तिय पुरुष को कवि कोविद रतिभाव।
तासों रीझत हैं सुकवि, सो सिंगार रसराव॥[1]

रसराज, छं० ३४२

१. मतिराम ने शृंगार के लक्षण में ही उसके स्थायीभाव रति का उल्लेख किया है। स्थायीभाव सामान्य का इन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

कुलपति

१.

हियो रहै जब लगि रहै सब वृत्तिन को भूप।
निश्चल इच्छा वासना, भाव वासना रूप॥

रसरहस्य, ३।११ और वृत्ति

२

सब भावनि सरदार[1] है, टारि सकै नहिं कोय।
सो थिर भाव बखानिये, रस स्वरूप जो होय॥

वही, ३।२२

देव

१.

जो जा रस की उपज में, पहिले अंकुर होइ।
सो ताको थिति भाव है, कहत सुकवि सब कोइ॥
नव रस के थिति भाव हैं, तिनको बहु विस्तार।
तिन में रति थिति भाव तें, उपजत रस शृंगार॥

भावविलास, विलास १, पृ०५

२.

नेक जु प्रियजन देखि सुनि आनभाव चित होइ।
अति कोविद पति कविन के, सुमति कहत रस सोइ॥

वही, वि०१, पृ०६

३.

वस्तु घिनौनी देखि सुनि घिन उपजे जिय माँहि।
घिन बाढे बीभत्स रस, चित की रुचि मिटि जाँहि॥
निंद्य कर्म करि निंद्य गति, सुनै कि देखै कोय।
तन सकोच मन संभ्रमस, द्विविध जुगुप्सा होय॥

शब्दरसायन, पृ०३६

कुमारमणिभट्ट

१.

मालामधि ज्यों सूत्र त्यों, विभावादि में आनि।
आदि, अंत, रस माँह थिर, थाई भाव बखानि॥

रसिकरसाल, ४।३

१. प्रमुख।

२.

रति, हाँसी अरु शोक, रिस, त्यों उछाह, सुत नेह।
भय, घिनि, विस्मय, शम तथा दस थाई धनि एह॥

वही, ४।४

सोमनाथ

१.

थिर अति थाई भाव वखानो। सब भावनि को ठाकुर जानो।
नौ विधि ताहि हिये मे आनो। सो अब परगट कहत सुमानो॥

शृंगारविलास, १।३२

२.

नायक सवही भाव को टारे टरे न रूप।
तासों थाई भाव रूप कहि वरनत हैं कवि भूप

रसपीयूषनिधि, ७।३२

३.

क – रति

इष्ट मिलन की चाह जो रति समझौ सो मित्त।
दरसन तें कै श्रवन तें कै सुमिरन तें मित्त॥

वही, १।३४

ख – उत्साह

जुद्ध दान अरु दया दमन हि में होत विकार।
ताहि सो उत्साह कहि वरनत रसिक उदार॥
धर्मवीर चौथो उर आनो। ....।

वही, १।३६

भिखारीदास

१.

तातें थाई भाव को रस को वीज गनाव।

काव्यनिर्णय, ४।८

२.

प्रीति हँसी सोको रिसो उत्साहों भय मित्त।
घिन विस्मय थिर भाव ये आठ वसें सुभ चित्त॥

वही, ४।१

३.

एक एक प्रति रसन मे उपजै हिये विकार।
ताको थाई नाम है, बरनत बुद्धि उदार॥

रससारांश, १२

४.

नाटक में रस आठई, कह्यो भरत रिषिराइ।
अनत नवम किय सांत रस, तहँ निरवेदे थाइ॥

काव्यनिर्णय, ४।४०

रसलीन

१.

जब भावन में यह लख्यौ थाई है रसमूल।
तब इनको बरनन कर्यो प्रथमै ह्वै अनुकूल॥
जो रस सन्मुख ह्वै कछू बदले सहज सुभाव।
जिन बदलनि को कहत हैं कविजन थाई भाव॥
जा रस संमुख जो कछू तनक बदल हिय होय।
ता रस को थाई वहै यह बरनत कवि लोय॥

रसप्रबोध, छ० २३-२५

२.

रति हासी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सु आनि।
भय घृणा अचरज समुझि पुनि निरवेदहि जिय जानि॥

वही, २६

शिवनाथ

१.

हास[1] हर्ष अरु शोच पुनि रतिसुख क्रोध उछाह।
अस्थायी तेहि जानिये पिय मिलबे की चाह॥

रसवृष्टि, १।३।६

२.

नवरस को बहु भेद है विविध प्रकार विचार।
सब को कवि शिवनाथ जू नायक है शृंगार॥

वही, १६।३

१. शृंगार को रसनायक मानने वाले शिवनाथ ने स्थायी भावों में हास का प्रथम उल्लेख कर असंबद्धता का परिचय दिया है।

जनराज

तौ लौ पूरनता नही, तौ लौ थाई मांनि।
पूरनता सों रस वहै, भेद थाइ रस जांनि ॥

कवितारसविनोद, १०।६८

२.

भाव सवनि सिरमौर है, सकै न को उद्गारि।
ताको थाई भाव कहि, सो रसरूप निहारि ॥
सो थाई रस आठ मै, आठ भांति को होत।
न्यारे न्यारे नाम अब, तिनके कहत उदोत ॥

वही, १०।६२-६३

३.

रति थाई सिंगार मे हसी हास मे आनि।
सोक सु करुना मै लहै क्रोध रौद्र में जानि ॥
है उत्साह सु वीर मै भय भयानक मांहि।
है निंदा वीभत्स में विस्मय अद्भुत ताहि ॥
नृति कवित्त मे अष्ट रस तिन थाइन के भेद।
नई सांत पुनि कवि कहै ता थाई निरवेद ॥

वही, १० ६५-६६

४.

समुझाये समुझै नही है उचार सु हीन ॥
नासा मै राषत नही फंदा तूल को दीन ॥

इहाँ निंदा की पूरनता नाहीं, याके नाक मै पीनस को रोग यातें। रूई को फोहा दिया विना वास आवत है ॥ यातें गिलानि थाई जानिये।

वही, १०।७५ और वृत्ति।

उजियारे कवि

१.

जगी जोति थिर भाव की उदित वासना जोइ।
ता सह पुनि रस कहत है कवि कोविद सव कोइ ॥

रसचद्रिका, ३।३

२.

प्रश्न

वत्सलता अरु चपलता भक्ति कृपनता जानि।
चारि और ये रस इहां क्यों न सु कहे वखानि ॥

आदरता अभिलाष पुनि श्रद्धा स्पृहा सुजानि।
लषि इनि थाई भाव ये चार भाँति पहिचानि ॥

वही, ३।१३ १४

उत्तर

ये संचारी भाव हैं अब सुनि लेउ सरूप।
वत्सला करुना विषै हास चपलता रूप ॥
भक्ति सातमय जानिये पृहा[1] कृपनता एक।
और गैर संबंध तें संचारी सुविवेक ॥

वही, ३।१५-१६

३.

चित्तवृत्ति द्वै भाँति है, कहत सुकवि सुविलास।
जानों एक निवृत्ति है, दुई प्रवृत्ति प्रकास ॥
ज्यों निवृत्ति मे होतु है सांत सुरस ..[2]।
त्यों प्रवृत्ति में होतु है माया रसनि गिनाइ ॥

वही, १३।१-२

पद्माकर

१.

रस अनुकूल विकार जो उर उपजत है आय।
थाई भाव बखानहीं तिनही को कबिराय ।
है सब भावन में सिरै टरत न कोटि उपाव।
ह्वै परिपूरन होत रस तेई थाई भाव ॥
रति इक हास जु सोक पुनि बहुरि क्रोध उतसाह।
भय गिलानि आचरज निरबेद कहत कविनाह ॥
नवरस के नौऊ इते थाई भाव प्रमान।

जगद्विनोद, ५७६-५७६

१. स्पृहा। २. ह०लि० प्रति में यह अंश फटा है।

२.

जहँ घिनाइ की चीज लखि सुमरि परस मन माह।
उपजत जो कछु घिन वहै ग्लानि कहत कविनाह॥

वही, ५६८

वेनीप्रवीन

१.

विषै वासना ते कछू, उपजै चित्त विकार।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कवित करतार॥

नवरसतरंग, २८४

२.

या रस को थाई जु है, ताही रस में होत।
अचल सदा ह्वै जात रस, थाई भाव उदोत।

वही, ३९२

३.

रति हाँसी अरु शोक, क्रोध उछाह अरु भीति भनि।
ग्लानि आचरज ओक, ये ई स्थाई भाव गनि॥

वही, ३१

इहाँ निंदा की पूरनता नाही।
याके नाक मे पीनस को रोग पातें॥
रूई को फोहा दिया विना वास आवत है।
यातें गिलानि थाई जानिने।

करन कवि

१.

क – रति

इष्ट वस्तु ईहा जनित मन विकार जहँ होइ।
कहु दरसन सुमिरन श्रवन अपरि पूरि रति सोइ॥

रसकल्लोल, १२

ख – हास

ष्याल वचन अरु वेष कृत मन विकार जहँ होइ।
कहत अपूरन सकल कवि हास कहावत होइ॥

वही, १४

ग – शोक

रति बिन इष्ट वियोग कृत मन विकार जिहि ठौर।
अपरिपूरि विलसत जहाँ सोक कहत सिरमौर॥

वही, १६

प्रतापसाहि

१.

हृदय कंद ते उठत जहँ आनँद अंकुर जोय।
गनि विरुद्ध अविरुद्ध ते थाई कहियत सोय॥

काव्यविलास, ३।२८

२.

विरुद्ध अविरुद्ध कहा, सो कहियत है। वीर रौद्रादि में विरुद्ध ते शृंगार, हरस्वादि में अबिरुद्ध तें सो थाई नौ प्रकार॥

वही, ३।२८ (वृत्ति)

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

अविरोधी सविरोध सब भावन संहित प्रधान।
मन विकार अंतर अलख सो थिर भाव प्रमान॥
सो थिर भावै रस कहैं जब परिपूरन होइ।
कछुक अपूरनता लहै भाव कहावत सोइ॥
नव विधि सों थिर भाव है रति हाँसी अरु शौक।
क्रोध उछाह सु भै घ्रिना विसमै[1] बरनंन लोक॥

१. विस्मय, आश्चर्य।

नवमो थाई सम कहे सुकवि काव्य की रीति।
वमु रस नाटक में कहे कर मुनि मति परतीति॥
रसिकविनोद, ३६४–३६७

ग्वाल कवि

१.

आलंबन तें जनित जो वीज रूप दरसाय।
अटल अपरिपूरन रहै सो थाई नौ गाय॥
रसरंग, १।१५

२.

रति हाँसी अरु सोक क्रोध उछाह रु भय वहुरि।
ग्लानि जु विस्मय ओक नवम कहत निरवेद को॥
वही, १।१६

रसिकविहारी

१.

संचारी तिहि भापहि, कवि मतिधाम।
रहे रसन मे मिलिके, जो सव ठाम॥
काव्यसुधाकर, ८।१

२.

क – निर्वेद
कछु विचार ते आवही उर में अपने खेद।
वुध जन ताहि वखानही संचारी निरवेद।
वही, ८।५

ख – अमरप
अहंकार जव आनको, आप कीजिये दूरि।
अमरष संचारी कहैं, ताहि सुकवि मतिभूरि॥
वही, ८।१७

ग – असूया
लखि न सकै सुख पार को, जो हिय माहि।
कहत असूया नाम सु, कविजन ताहि॥
वही, ८।२३

घ – अपस्मार

जहाँ सुदुःखादिक ते, मुरछा होय।
अपस्मार तिहि भाषै, कवि सब कोय ॥

वही, ८।५२

नंदराम

१.

जैसे इच्छु[1] विकार ते होत सरकरा[2] कंद।
तैसो ही थिर भाव तें सुरस रूप आनंद ॥

शृंगारदर्पण, १०।२

१.

प्रगट होत हिय बीच जो रस अनुकूल विकार।
तेई भाव है कहत सुमति आगार ॥
इनहि विगत नहिं होत है रस परिपूरन जान।
अचल रहत निज निज रसंन तिनको नाम बखान ॥
प्रथम सुरति पुनि हास त्यों शोक क्रोध पहिचान।
तथा हरष भय ग्लानि कहि अरु आचर्ज बखान ॥
ये ई आठ प्रमान हैं थाई नाटक साज।
कहि निर्वेद समेत नव काव्यरीति कविराज ॥

शृंगारदर्पण, ६।१–४

लछिराम

१.

रस अनुकूल विकार जू ऊपजै हीअ।
थाई ताहि बखानत जे रस-जीअ ॥

महेश्वरविलास, ४।२२७

२.

रति सहास गनि सोकहि क्रोधुतसाह[1]।
भय गलानि अचरज्ज निरवेद सुचाह ॥

१. इक्षु, ऊख। २. खाँड़ या गुड़।

नव थाई नव रस के बरनि प्रवीन।
प्रथक रीति सों बरनों मत प्राचीन॥

वही, ४।२२९

३.

क – रति

पतिसंगम की मानस प्रीति नवीन।
रति संचारी या विधि मत प्राचीन॥

वही, ४।२३१

ख – हास

नवला विहसन लागी सहज सिंगार।
चहत बिलोकन पियमुख आज सवार।

वही, ४।२३३

ग – शोक

परम मित्र को संकट परषत नैन।
दुखद सिंधु अस्थाई सोक सबैन॥[2]

वही, ४।२३७

*

१. क्रोध और उत्साह।

२. उपर्युक्त कतिपय स्थायीभावों के लक्षणों से स्पष्ट है कि लछिराम इनके स्वरूप को ठीक से व्यक्त नहीं कर सके हैं।

षष्ठ अध्याय

रस भेद

केशव

१.

प्रथम सिंगार सुहास्य रस करुना रुद्र सु बीर।
भय बीमत्स बखानियें अद्भुत सांत सुधीर॥
नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सबको 'केशवदास' हरि, नायक हैं शृंगार॥

रशिकप्रिया, १।१५–१६

२.

सुभ सयोग वियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति॥

वही, १।१८

३.

क – सो प्रच्छन्न. सँजोग अरु कहैं वियोग प्रमान।
जानैं पीउ पिया कि सखि होइ लु तिनहिं समान॥

वही, १।१९

ख – सो प्रकास संजोग अरु कहैं प्रकास वियोग।
अपने अपने चित्त में, जानैं सिगरे लोग॥

वही, १।२१

४.

विप्रलंभ सिंगार को चारि प्रकार प्रकास।
प्रथम पूर्व अनुराग पुनि, करुना मान प्रवास॥

वही, ८।२

५.

छूटि जात केशव जहाँ सुख के सबै उपाय।
करुना रस उपजत तहाँ, आपुन तें अकुलाय॥

वही, ११।१

६.

वरनत बाढ़े ग्रंथ बहु, कहे न केशवदास।
औरो रस यो जानियो सबै प्रछन्न प्रकास॥

वही, १४-४

चिंतामणि

१.

जामै थाई रति सुनो मन की लगन अनूप।
चिंतामनि कवि कहत है सो शृंगार सरूप॥
सुनो एक संजोग है विप्रलंभ कहि और।
द्विविध होत शृंगार यों बरनत कवि सिरमौर॥

कविकुलकल्पतरु, ८।१-२

२.

क - जहाँ दंपती प्रीति सों विलसत रचत बिहार।
चिंतामनि कवि कहत हैं यों संयोग सिंगार॥

वही ८।३

ख - जहाँ मिले नहिं नारि अरु पुरुष सुबरन वियोग।
विप्रलंभ यह नाम कहि बरनत सब कवि लोग॥

वही, ८।६

३.

सो पूरब अनुराग अरु मान प्रवास बखानि।
पुनि कहिए करुनात्मक सु जन लेहु मन आनि॥

वही, ८।११

४.

क - देवपुत्र गुरु आदि जे तिनमै जो रति भाव।
कै संचारी व्यक्ति सो शुद्ध भाव समुझाव॥

वही, ८।१५८

ख - अनुचित विषयक रति जु है सोई तरस अभास।
अनुचित विषयक भाव जो सो पुनि भावा भास॥

वही, ८।१६२

ग - उपसमया वै भाव जो भाव संत सो जानि।
भाव उदे आदिक सुनो उदयादिक पहिचानि॥

वही, ८।१६५

तोष

१.

प्रथम सिगार सुहास कहि करुन रौद्र अरु वीर।
भय बीभत्स अद्भुत बरनि सांत सुनो मतिधीर॥

सुधानिधि, ८

२.

थाई भाव जहाँ दया होत कौन हू भाइ।
तहाँ कहत वात्सल्य रस करुना रसहि जनाइ॥
गुरू विप्र की सुरन की भक्ति दया अधिकार।
धर्मकथा हरि को भजन रस सांतहि को चार॥

वही, ५३८–३६

३.

गुप्त प्रगट ते जानिये सबै प्रछन्न प्रकास।
भूत भविष्य व्रतमान[1] को सब भेदनि मे बास॥

वही, ५४०

४.

उतसाह वर्धन रोम रोमनि चाहि विधि को बीर है।
रन दान दाया सत्य चारि प्रकार बरनत धीर है॥

वही, ४४३

मतिराम

१.

जो बरनत तिय पुरुष को कवि कोविंद रतिभाव।
तासों रीझत हैं सुकवि, सो सिंगार रसराव॥

रसराज, ३४२

२.

कहि पूरब अनुराग अरु मान प्रवास विचारि।
रस सिंगार वियोग के तीन भेद निरधारि॥

वही, ३८१

१. वर्तमान।

३.

जो प्रथमहि देखे सुने बढ़े प्रेम की लाग।
बिन मिलाप जो विकलता, सो पूरब अनुराग॥

वही, ३८२

४.

होत वियोग शृंगार में प्रकटदशा नव जानि।
प्रथम कहे अभिलाष पुनि चिंता स्मृति बरवानि॥
गुनवर्धन उद्वेग पुनि कहि प्रलाप उन्माद।
व्याधि बहुरि जड़ता कहत कवि कोविद अविवाद॥

रसराज, ३६८-३६६

कुलपति

१.

अब वियोग कहि पाँच विधि तहँ पूरब अनुराग।
विरह ईर्ष्या शाप पुनि, गमन विदेश विभाव॥

रसरहस्य, ३।४३

२.

समता की सुधि है जहाँ, सु है युद्ध उत्साह।
जहाँ भूलै सुधि सम असम, सो हैं क्रोध प्रवाह॥

वही, ३।७३

३.

संचारी यह व्यंग पुनि, देव राजरति होय।
तहाँ प्रधानता करि कहत, भाव ध्वनि है सोय॥

वही, ३।६४

देव

१.

लौकिक और अलौकिक हि द्वै विधि कहत बखानि॥
नयनादिक इंद्रियनु के, जोगहि लौकिक जानु।
आतम मान संयोग तें, होय अलौकिक ज्ञानु॥
कहत अलौकिक तीन विधि, प्रथम स्वापनिक मानु।
मनोरथ कवि देव अरु, औपनायक बखानु॥

भावविलास, वि० ३, पृ० ६५

२.

यहि भाँति आठ विधि कहत कबि, नाटक मत भरतादि सब।
अरु सांत यतन मत काव्य के, लौकिक रस के भेद नव ॥

भावविलास, वि० ३, ६८

३.

द्वै प्रकार सिंगार रस, है संभोग विभोग[1]।
सो प्रच्छन्न प्रकाश करि, कहत चारि विधि लोग ॥
देव कहै प्रच्छन्न सो, जाकौ दुरौ विलास।
जानहिं जाको सकलजन, बरनैं ताहि प्रकाश ॥

वही, वि० ३, पृ० ६८

३.

सुहृद श्रवन दरसन परस, जहाँ परस्पर नाहिं।
सो वियोग शृंगार जहँ, मिलन आस मन माँहि ॥
कहुँ पूरब अनुराग अरु, मान प्रवास बखान।
करुनातम[2] इह भाँति करि, वियोग चौविधि जान ॥

वही; वि० ३, पृ० ७६

४.

क – पूर्वानुराग

दंपतीन के देखि सुनि, बढ़ै परस्पर प्रेम।
सो पूरब अनुराग जहँ, मन मिलिबे को नेम ॥

वही, वि० ३, पृ० ७६

ख – मान

पति परपतिनी रति करत, पतिनी करति जु मान।
गुरु मध्यम लघु भेद करि, ताहू त्रिविध बखान ॥
पति पर पर तिय चिह्न लखि, करति त्रिया गुरु मान।
मध्यम ताको नाम सुनि, ता दरसन लघु जान ॥

वही, वि० ३, पृ०८५

१. वियोग। २. करुणात्मक।

ग – प्रवास

प्रीतम काहू काज दै, अवधि गयो परदेस।
सो प्रवास जहँ दुहुन कौ, कष्टक हैं विबुधेश॥

वही, वि० ३, पृ० ८६

घ – करुणात्मक वियोग

दंपतीन मैं एक के, विषम मूरछा होइ।
जहँ अति आकुल दूसरो, करुनातम कहि सोइ॥

वही, वि० ३, पृ० ६२

कुमारमणि भट्ट

१.

गनि सिंगार रस हास रस, करुन रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, बीभत्स त्यों, अद्भुत, शांत सुधीर॥

रसिकरसाल, ३।११

२.

लौकिक तथा अलौकिकै, द्वै जानहुँ रस ठौर।
लौकिक लोक प्रसिद्ध त्यौं, कवित नृत्य मे और॥

वही, ३।५

३.

कृष्ण देव रंग श्याम त्यौं रति थाई श्रृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि॥

वही, ३।१२

सोमनाथ

१.

विप्रलंभ को भेद पुनि सुनि पूरव अनुराग।
है ताहि मे दस दसा वरनत सुकवि सुभाव॥

रसपीयूषनिधि, १५।४

२.

नवरस को पति सरस अति रससिंगार पहिचानि।

वही, ८।१

३.

क – सब तें मन अति सिमिट कै बसै ईश में जाय।
जग बहु भाँतिन बिदरिबौ, सो निरवेद बताय॥

वही, ७।४३

× × ×

प्रगट होय निरवेद जहां ब्रह्म ज्ञान मे आय।
सुन कवित्त तासों कहैं, सांत सु रस सुख पाय॥

वही, १६।२०

ख – सांत रस नहिं होतु है, नाटक में सुनिमित्र।
बरनत है कविता विषे, पंडित सुकवि विचित्र॥

शृंगारविलास, २।३६

भिखारीदास

१.

नाटक मे रस आठ ही बढ्यो भरत ऋषिराइ।
अनत नवम किय सांत रस, तहँ निर्वेदै थाइ॥

काव्यनिर्णय, ४।४०

२.

शुभ संयोग वियोग मिलि, है शृंगार द्वै भाइ।
काहू सम मिश्रित मिलै, दीन्हों चारि गनाइ॥

रससाराश, २८३

३.

संयोग ही वियोग है, वियोग ही संयोग।
करि मिश्रित शृंगार को, बरनत है सब लोग॥

वही, ४१६

४.

मरन विरह है मुख्य पै, करुन करु न इहि भाइ।
मरिबो इच्छनि ग्लानि ते, होत निरास बनाइ॥

वही, ३।१२

५.

भाव उदै, संध्यो, सबल, सांतिहु, भावाभास।
रसाभास ये मुख्य हैं, होत रसहि लौं दास॥

काव्यनिर्णय, ४।४४

रसलीन

१.

पितु सुत वालक वालकहि वंधु वंधु सो नेह।
थाई भाव जहाँ दया वात्सल्य रस येह॥

रसप्रवोध, १०६६

२.

सो रस उपजत तीन विधि कविजन करत वखान।
कहुँ दरसन कहुँ श्रवन कहुँ सुमिरन ते परमान॥

वही, ३८

३.

प्रथम सिंगार सु हास रस करुना रौद्रहि जान।
वीर रु भय वीभत्स कहि अद्भुत सात वखान॥
काव्यमते ये रस नवो वरनत सुमति विसेषि।
नाटक सतरस आठ है विना सांत अविरेष॥

वही, ३६–३७

४.

क – पूर्वानुराग

जो पहिले सुनिकै निरष वढ़ै प्रेम की लाग॥
विनु मिलाप जो विकलता सो पूरवानुराग।

वही, ६२१

ख – प्रवास विरह

त्रितिय वियोग प्रवास जो पिय प्यारी है देस।
जामे नेक सुहात नहि उद्दीपन को लेस॥

वही, ६४५

ग – करुना विरह

सिव जार्यो जव काम तव रति किय अधिक विलाप।
जिहि विलाप महँ तिहि सुनी यह धुनि नभ ते आय॥
द्वापर मैं जव होइगो आनि कृष्ण अवतार।
तिनके सुत को रूप धरि मिलि है तव भरतार॥
यह सुनि कै जो विरह दुख रति को भयो प्रकाश।
सोई करुना विरह सव वरनत वुद्धि निवास॥
पुनि याहू करुना विरह वरनत कवि समुदाइ।
सुख उपाय ना रहे जिय निकसन को अकुलाइ॥

जासो पति सब जगत सो पति सो मिलत न आइ ॥
रे जिय जीबो विपत को क्यों यह तोहि सुहाइ।
सुख ले सँग जिहि जियत ज्यौ पिया न रच्छक काज।
सोऊ अब दुख पाइ के चलो चहत है आज ॥

वही, ६४८–६५१

५.

सबै प्रच्छन्न प्रकास है वहै प्रगट उद्दोत।
भूत भविष्य वर्तमान पुनि भयो होइगो होत ॥
सब विशेष सामान्य है लक्षन सकल विशेषि।
होइ कछू कुल लछन ते सो सामान्य विरेषि ॥
जो रस उपजै आप सों सुनि सत जिय जानि।
होइ और जे हेत तें सो परनिसत[1] बखानि ॥
है लक्षन जहँ पाइये तिनि में अधिक जु होइ।
ताही को यह कहत हैं यह बरनत कवि लोइ ॥

वही, १०६१–१०६४

६.

एक ओर की प्रीति अरु तिय आगे नर प्रीति।
अधम पूज्य सो प्रीति अरु चोरी सों रस रीति ॥
हांसी गुरु जन सिरी अरु उत्तम वधु उत्साह।
चोप बधनि मै सोक पै रसाभास सब चाह ॥

वही, १०६५–६६

७.

भाव न पूरन है जहाँ भावाभास है सोइ।
कृष्ण छाड़ि कै प्रीत ज्यों और देस सो होइ ॥
जैसे नायक नायिका इनहूँ के आभास।
जेहि इनकी सी रीति तें औरो कहैं प्रकास ॥

वही, १०९७–९८

रूपसाहि

१.

ब्रह्मानंद अखंड जोहि पहुँ लसत लहि ग्यान।
सांत अलौकिक रस कह्यो जानत साधु सुजान ॥

१. परिनिष्ठित।

लोक विषय सुनि निरषि जहि पै आनंद जु होइ।
तीन भाँति को सुकवि कहि लौकिक रस यह सोइ॥
स्वाप्निक मानोरथिक पुनि औपनायक कहि मानि॥
स्वप्न मनोरथ जनित कहि नट नाटक उर आनि॥

रूपविलास, ११।३-५

२.

कह्यो औपनाइक कविनि आठ भाँति चित देहु।
न्यारे न्यारे भेद अब नवम सहित सुनि लेहु॥
प्रथम सिंगार सुहास रस करुन रुद्र अरु वीर।
भय वीभत्स बखानियें अद्‌भुत सांत गहीर॥

वही, ११।८-६

३.

विप्रलंभ सु आठ विधि कह्यो देसंतर प्रिय गौन।
गुरु शासन, अभिलाष तें श्राप ईरषा हौन॥
दैव योग तें, समय तें उतपातहु तें मानि।
इनतें होतु वियोग रस, बरनत कवि मृदु मानि॥

वही, ११।३२-३३

शिवनाथ

१.

नवरस को बहुभेद है विविध प्रकार विचार।
सब को कवि शिवनाथ जू नायक है शृंगार॥

रसवृष्टि, १६।३

२.

सुख समूह दंपति लहै परिपूरन रति भाव।
सो सिंगार रस वर्णिये सुनत होइ चित भाव॥

वही, १६।५

३.

दोऊ चाह भरे रहैं विप्रलंभ शृंगार।
कै समीप डर लाज ते कै विदेश पिय प्यार॥
विप्रलभ द्वै विध कह्यो दश प्रकार को भेद।
दशो अवस्था देत है तन मन यौवन खेद॥

वही, १२।१-२

४.

एक कहत अनुकूल है, कहत एक प्रतिकूल।
होत दुसंधी रस तहाँ, सकल रसन को मूल॥

वही, १६।३८

जनराज

१.

इक पूरव अनुराग पुनि दूजो करुन प्रकास।
तीजो मान बखानिये, चौथो कहत प्रवास॥

कवितारसविनोद, २०।२

२.

साहै चारि प्रकार सु कर्म। जुधहि दान दया औ धर्म।
नृत्त कवित्त में जानौ सोई। तिनके भेद सुनो कवि लोई॥

वही, २१।२८

३.

वीर हैं सुधि सम असम, भूले रौद्र बखानि।
यह युद्धवीर अरु रौद्र को, भेद लेह कवि जानि॥

वही, २१।३१

उजियारे कवि

१.

ऐसें अब सुनौं सो रस दो, विधि होइ।
इह लौकिक दूजो बहुरि कहत अलौकिक जानि॥
लौकिक संसारीक सु रस ज्ञान अलौकिक मांनि।

रसचंद्रिका, ३ ६,७

२.

गुरुनिदेश अभिलाष पुनि मान सराप प्रवास।
समय देव सतु इनिको आदिके औरहू है॥

वही, ५।४ और वृत्ति

३.

युद्ध दान अरु दया करि वीर तीन विधि जानि।

वही, ६।२

४.

वत्सलता अरु चपलता भक्ति कृपनता जानि।
चारि और ये रस इहाँ क्यों न सु कहे वषानि॥
आदरता अभिलाष पुनि स्रद्धा स्पृहा सु जानि।
लषि इनि थाई भाव ये चारि भाँति पहचाँनि॥

वही, ३।१३, १४

पद्माकर

१.

क– सी रस है नव भाँति को प्रथम कहत सिंगार।
हास्य करुन पुनि रौद्र गनि बीर सुच्यार प्रकार॥
वहुरि भयानक जानिये पुनि वीभत्स वखानि।
अद्भुत अष्टम नवम पुनि सांत सु रस उर आनि॥

जगद्विनोद, ६१०–६११

ख– नवरस में जु सिंगार रस सिरैं कहत सब कोइ।

२.

त्रिविध वियोग सिंगार यह कहि पूरब अनुराग।
वरनत मान प्रवास पुनि निरखि नेह की लाग॥

जगद्विनोद, ६२६

३.

जुद्धवीर इक नाम है दयावीर विय नाम।
दानवीर तीजो सु पुनि धर्मवीर अभिराम॥

वही, ६८६

बेनी प्रवीन

१.

क– प्रथम सिंगार सुहास, करुन रौद्र अरु वीर रस।
भय वीभत्स प्रकास, अद्भुत सात[1] गनाइए॥
नवरस में व्रजराज नित, कहत सुकवि प्राचीन।
सो नवरस सुनि रीझिहैं, नवल कृस्न परवीन॥

नवरसतरंग, २८–२६

१. यहाँ 'सांत' (शांत) पाठ रहा होगा। लिपिक ने गलती से 'सात' लिख दिया होगा।

ख – स्याम वरण व्रजराज पति, स्थाई है रति भाव।
ताहि कहत सिंगार है, सकस रसन को राव॥

वही, ४११

२.

तेहि वियोग शृंगारहि, त्रिविध त्रिसूल।
कहत सुकवि जिन जानी, कविता मूल॥
यक पूरव अनुराग रु, दूजो मान।
फिर प्रवास कहि तीजो, करत बखान॥
चौथो करुणा रस कह्यो, आस रहित सो होय।
सो कारन मन समुझिकै, नहि बरनंत कवि कोय॥

वही, ४४२-४४

३.

धरम, दया, रन, दान में, आनंद थाई संग।
उमड़ि चले सो वीर रस, कनक बरन वर रंग॥

वही, ५११

करन कवि

१.

विप्रलंभ सिंगार को कहत जु पाँच प्रकार।
विरह ईरषा स्राप पुनि भाविक विरह विचार॥
बहुरि पुर्व अनुराग है पाँचो विधि ए जानि।
प्रथक प्रथक ए सबनि को क्रमते कहें बखानि॥

रसकल्लोल, ४०–४१

२.

जहँ आसा है मिलन की रति थाई तहँ होइ।
जहँ आसा नहि मिलन की कहत सोक सब कोइ॥

वही, ५५

३.

कहत वीर ताको सु कवि सो पुनि चारि प्रकार।
जुद्ध दया अरु धर्म पुनि दान सुबुद्धि उदार॥

वही, ६२

४.

माया अरु वात्सल्य ए लो भक्ति रस और।
अद्भुत करुना शांति मे हास्य मिलत सिरमौर॥

रसकल्लोल, ८०

प्रतापसाहि

१.

द्वै विधि कहत सँजोग पुनि पाँच प्रकार वियोग।
पृथक् पृथक् इन सबन के भेद कहत कवि लोग॥
पूर्वराग पुनि मान कहि, बहुरि प्रवास बखानि।
उत्कंठा पुनि श्राप कहि, पाँच भाँति पहिचानि॥

काव्यविलास, ३।५१

२.

पूर्वराग भेद

सो तीन भाँति नीलरंग, कुसुमरंग, मजीठरंग ते तीनहु दर्शन में जानिये। चित्र दर्शन में नीले रंग अरु स्वप्न दर्शन में कुसुम रंग अरु साक्षात् दर्शन में मजीठ रंग।

वही, ३।५२ (वृत्ति)

चंद्रशेखर वाजपेयी

१.

क – दरस परस सुख परस्पर जब दंपति को होइ।
काम चातुरी कोकविधि सुचि सँजोग है सोइ॥

रसिकविनोद, ३६६

ख – मिलिबो होइ न प्रीतिवस जुगुल इष्ट अकुलाइ।
सो वियोग सिंगार करि वरनत हैं कविराइ॥

वही, ४२२

२.

पंच हेत सो होत है सो वियोग पहिचानि।
है पूरब अनुराग पुनि है प्रवास यह जानि॥
कहत ईरषा विरह पुनि श्राप पाँचवो होइ।
विप्रलंभ शृंगार के भेद पंच ये जोइ॥

वही, ४२३–२४

ग्वाल कवि

१.

देवयोग ते होय जो अनायास सु वियोग।
ताके बहुत प्रकार हैं करियत नाम प्रयोग॥
श्राप मेह-पावक पवन्नपबंधन गद जोग।
सिंहादिक भय दास वद पिया विरक्त प्रयोग॥
उत्पन्न भय दुहुँ भीड ते इत्यादिक बहु होत।
लखियो द्वै इक लक्ष ते सब के लक्ष उदोत॥

वही, ६।५३–५५

२.

हास्य आदि बसु रसन में षट स्वनिष्ठ पर निष्ठ।
रौद्र वीर रस ये दुहुँ है केवल पर निष्ठ॥

रसरंग, ८।१

३.

चिदानंद घन ब्रह्म सम रस है श्रुति परमान।
दुविधि सुरस लौकिक जु इक दुतिय अलौकिक जान॥
रस जु अलौकिक है त्रिधा स्वाप्निक एक विचार।
मानोरथिक सुजानिये औपनयनिकहि धार॥
औपनयनिक जो रस लिख्यौ सो नौविधि मतिधीर।
कहि शृंगार जु हास अरु करुना रौद्र सुवीर॥
फेरि भयानक भाखिकैं बीभत्स जु वरनात।
अद्भुत लो ये आठ रस वरनत नाट्य दिखात॥
सांत सु नवमो काव्यकर कहत काव्य के माँहि।
इनमै ते शृंगार रस कहत प्रथम चित चाँहि॥

वही, २।२–६

४.

वीर चार जुध दान पुनि दया धर्म मै होय।
थिति उत्साह जु गौर रँग इंद्र देवता जोय॥
संचारी चारो नमै मति आवेग रु गर्व।
पुलक उग्रता धीरता हरषादिक हैं सर्व॥

वही, ८।१६–२०

नंदराम

१.

कहि सयोग वियोग तें द्वै प्रकार शृंगार।
मिलन अनमिलन दंपति सु कवि करत निरधार॥

शृंगारदर्पण, १०।१०

२.

क – इक पुरबे अनुराग अरु मान प्रवास बखान।
यह वियोग शृंगार रस तीन भाँति को जान॥

वही, १०।१७

ख – जब नायक सों नायिका करत कबहु अभिमान।
हेत पाय प्रगटत तहाँ लघु मध्यम गुरु मान॥

वही, ३।१०

रसिकविहारी

१.

होत वियोग शृंगार में तीन भेद ए जानि।
कहि पूरब अनुराग पुनि, मान प्रवास बखानि॥

काव्यसुधाकर, १०।१६

लछिराम

१.

विप्रलम्भ के भीतर पूर्वनुराग।
मान फेरि सु प्रवासैं गनि बड़ भाग॥

महेश्वरविलास, ४।२८०

२.

सापराध पति हेरत रिसमय सान।
लघु मध्यम गुरु बरनत त्रिविध सुमान॥
पर तिय बदन विलोकत पतिहि रिसाय।
छूटे छनही मे फिर आनंद पाय॥

वही, ४।२८८

३.

प्रथम देव थिर हाँसे सेत जो रंग।
बिछवि वोलि सु उछलिबो भाव प्रसंग॥
वैवो वदन जु हँसियो गुर लघु राग।
सु अनुभव संचारी मुद बड़ भाग॥

वही, ४।३१५–२६

*

सप्तम अध्याय

रसदोष

केशव

१.

राजत रंच न दोषजुत कविता बनिता मित्र ॥
बुंदक हाला होत ज्यों गंगाधर अपवित्र ॥
विप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजे मित्र।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषनसहित कवित्त ॥

कविप्रिया, ३।४-५

२.

प्रत्यनीक नीरस बिरस 'केसव' दुःसंघान।
पात्रादुष्ट कवित्त बहु करहि न सु कवि बखान ॥

रसिकप्रिया, १६।१

३.

जहँ सिंगार बीभत्स भय, बीरहि बरने कोइ।
रौद्र सु करुना मिलत ही, प्रत्यनीक[१] रस होइ ॥

वही, १६।२

४.

जहाँ दंपती मुँह मिले सदा रहे यह रीति।
कपट करे लपटाय तन नीरस[२] रस की प्रीति ॥

वही, १६।४

५.

जहाँ सोक भरि भोग को वरनतु है कवि कोइ।
'केसवदास' हुलास सों, तहीं विरस[३] रसु होइ ॥

वही, १६।६

१. परंपरागत 'प्रतिकूल विभावादि ग्रह', नामक रसदोष में अंतर्भुक्त किया जा सकता है।

२. इसे 'रसाभास' से तुलित कर सकते हैं।

३. वस्तुतः बिरस और प्रत्यनीक (जिसे स्वयं केशव ने प्रतिपादित किया है) में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

६.

एक होइ अनुकूल जहँ, दूजो है प्रतिकूल।
केशव दुःसाधन रस[1], सोभित तहाँ समूल॥

वही, १६।८

७.

जैसो जहाँ न बूझिये, तैसो कहिये पुष्ट।
विनु विचार जो वरनिये, सो रस पात्रादुष्ट[2]॥

वही, १६।१०

चिंतामणि

१.

संचारी थाईरसो शब्द कथित जो होइ।
अरु अनुभाव की भाव ते व्यक्त कष्ट ते होइ॥
प्रतिकूल विभावादि को गहन आन सम उक्ति।
मुख को अनुसंधान नहि अंगहि की बहु जुक्ति॥
प्रक्रितिनि को पुनि विपर्जय अनुमित बरनन जानि।
चिंतामनि कवि कहत हैं (ए) रस दोष बखानि॥

कविकुलकल्पतरु, ४।८४-८६

२.

क – अकाण्डप्रथन

भली भई वहुते अली लागी घर में आगि।
मेरे कर की गागरी लीन्ही साजन भागि॥

ख – अंगी का अननुसंधान

मै चौपर खेलन लगी निसा समैं में आजु।
वैठी सखी समाज में भूलि गए वृजराजु॥

१. इसे भी रसाभास से अपृथक् ही मानना चाहिए।

२. इसे मम्मट प्रतिपादित 'अपुष्टार्थ' नामक अर्थदोष में अंतर्भुक्त किया जा सकता है।

३ – अंग की अतिविस्तृति

कालिंदी सुंदर नदी सुंदर पुलिन सरूप।
वृंदावन घन छाँह तकि कुंजनि रूप अनूप[1] ॥

कविकुलकल्पतरु, ४।९०–९२

कुलपति

१.

जहाँ विरस ताको कहै, तहाँ होय यह दोष।
बाधहि जहाँ विरुद्ध को, तहाँ करे रस पोष।
अनुचित ते नहि और हैं, रसहिं बिगारन हेत।
उचित प्रसिद्ध बनाइये, यहै रसन के खेत॥

रसरहस्य, ५।१३८–३९

२.

दोषरहित कीजै कवित सब सुखदायक होय।
तिन तजिबे कों कवित के, दोष सुनै कवि लोय॥
शब्द अर्थ में प्रगट ह्वै, रस समझन नहि देइ।
सो दूषण तन मन विथा, जो जिय को हरि लेइ॥

रसरहस्य, ५।१–२

३.

जाति कदंबन कुसुम बहु, बरनन मेघ वसंत।
पावस कोकिल किल शब्द, जरा अधिक रति कंत[2] ॥

वही, ५।१३६

४.

घरी द्वैक भेंट भई तब ही तें उर माँझ,
वाही भाँति काम के नगारे की धमक है॥

वृत्ति—यहाँ पर काम का सताना व्यंग्य रखना चाहिए।[3]

१. ये सारे रस दोषों के उदाहरण हैं, लक्षण नही

२. समयादि विरुद्ध वर्णन को भी कुलपति ने प्रकृतिविपर्यय दोष के अंतर्गत रख दिया है।

३. कुलपति ने प्राचीन 'अनंगस्याभिधान' नामक रसदोष को 'काम को नाम' रसदोष स्वीकार किया है। उसी का उदाहरण प्रस्तुत है। गलती से उन्होने अनंग (न अंग) को काम समझ लिया है।

देव

१.

सरस निरस, संमुख विमुख स्वपरनिष्ठ पहिचानि।
भीत अभीत, उदास चित, उचित सुचित बखानि ॥[1]

शब्द रसायन, प्र०५, पृ० ५०

कुमारमणि भट्ट

१.

रस थाई प्रभृतिक कह्यो, नाम न व्यंग्य हि बोध।
विभावादि प्रतिकूलता कष्टबोध तहँ सोध॥
फिरि फिरि दीपति रसहिं को, अकस्मात् विच्छेद।
अकस्मात् विस्तार त्यों अंग विस्तार को भेद॥
अंगि भूल्यो कि विरुद्ध अंग, प्रकृति विपर्यय लेख।
शृंगारादिक रसनि के दूषन इतने देख॥

रसिकरसाल, १०।१०–१०४

सोमनाथ

१.

रस को मुख गनि हनत हैं जिहिं शब्दारथ ओर।
तासों दूपन कहत है कवि रसिकनि के जोर॥
जाके राखे तें रहे दूरि करै मिटि जाय।
शब्दारथ अरु वाक को रस को दोष वताय॥

रसपीयूषनिधि, २०।१–२

भिखारीदास

१.

दोप सब्दहूँ वाक्यहूँ, अर्थ रसहु में होइ।
तिहिं तजि कविताई करै, सज्जन सुमति जु कोइ॥

काव्यनिर्णय, २३।१

२.

क – रस अरु चर थिर भाव की, सब्द वाच्यता होइ।
ताहि कहत रसदोष हैं, कहूँ अदोपिल सोइ॥

काव्यनिर्णय, २५।१

१. इन रसदोषों की कोई परंपरा नहीं है। ये सर्वथा नवीन तो हैं पर युक्ति-संगत नहीं हैं।

ख – जहँ विभाव अनुभाव की कष्ट कल्पना व्यक्ति।
रसदूषन ताहू कहै, जिन्हैं काव्य को सक्ति।

वही, २५।६

ग – भाव रसनि प्रतिकूलता, पुनि पुनि दीपति जुक्ति।
येऊ हैं रसदोष जहँ असमै उक्ति न उक्ति॥

वही, २५।१०

घ – अंगहि को बरनन करे, अंगी देइ भुलाइ।
येऊ है रसदोष मे, सुनौ सकल कबिराइ॥

वही २५।२४

ङ – एहि विधि औरो जानिये, अनुचित बरनन चोख।
प्रकृति विपर्जय होत है, अरु सिगरो रस दोष॥

वही, २५।३४

३.

सोक हास रति अद्‌भुतहि, लोन अदिव्ये लोग।
दिव्यादिव्यनि मे सकति, नही दिव्य में योग॥

वही, २५।२६

४.

पुनि पुनि दीपति ही कहैं, उपमादिक कछु नाहि।
ताहि ते सज्जन गनें याहू दूषन मांहि॥

वही, २५।२०

५.

बोध किए उपमा दिए, लिये पराये अग॥
प्रतिकूलो रसभाव है, गुनमय पाइ प्रसंग॥[१]

वही, २५।१३

जनराज

१.

गुनगन भूषन रस उदित, दूषन प्रगट न होय।
विग रु सब्दारथ सहित, कावि कहावै सोय॥

कवितारसविनोद, १।१४

१. दास ने रसदोषो के परिहार बताकर मौलिकता प्रदर्शित की है।

२.

रस संचारी थाई भाव सुनाम प्रगट ही मेलो।
अरु विभाव अनुभाव कष्टा अरु विभाव अनुभाव अकेलो॥
ह्वै विभाव अनुभाव प्रतिकूल रु दीपति पुनि पुनि होइ।
अरु अकंडग्र प्रथनु विछादहि पुनि सुअग विस्तार सु लोई॥
अग विसमति प्रकृतिविवर्जित पुनि अनंग अभिधान लहै।
रसविरुद्ध आदि ए नाम सुरस दूषन के प्रगट गहै॥

वही, ९।२३–२५

३.

क – संचारी को नाम

जिहाँ संचारी भाव को, नाम प्रकट ही होय।
ते साक्षात् दूषन सही, वर्नत है कवि लोइ।

कवितारसविनोद, ६।१२६

ख – थाई भाव को नाम

थाई कहियत परगट होय।
स्थाई दूषन जानो सोय॥

वही, ६।१२६

ग – विभाव की प्रतीत कष्ट सों

जित विभाव की कष्ट सों, होत प्रतीत सुजान।
दूषन कष्ट विभाव सों, कविजन करत वपान॥

वहीं, ६।१३१

घ – अनुभाव की प्रतीत कष्ट सों

जिहाँ अनुभाव प्रतीत जो, महाकष्ट सों होय।
ते कष्ट अनुभाव है, दूषन दूषन जोय॥

वही, ९।१३३

ङ – प्रतिकूल विभाव

ह्वै विभाव औरे जहाँ, औरे भाउ उसूल।
रसदूपन ठहराव मैं सो, विभाव प्रतिकूल॥

वही, ६।१३६

च – दीपति पुनि पुनि

है रस प्रथमै सी मिटि जाई।
वहुरि आय वैही दरसाई॥

दोष सु दीपति पुनि पुनि जानौ।
रस बरनन में चाहि न आनौ॥

छ – अकाडप्रथन

औरे रस वरनन करत, औरे रस कहि जाय।
सो अकाडदूषन प्रथन, वरनत है कविराय॥

कवितारसविनोद, ६।१४०

ज – रसच्छेद

जा रस को समयो जहाँ, सो न होय निरवाह।
दूषन रस मै होइ सो, वरनत है कविनाह॥

वही, ६।१४२

झ – अगीविस्तार

जित अंगी तै अंग विसेषि।
अंग विस्तार सुदूषन पेषि॥

वही, ६।१ ४

ञ – अंगीविस्मृति

मुाष्ष[1] होय सो कथ्यो न होय।
अगी विस्मृति जानो सोय॥

वही, ६।१४५

ट – प्रकृतिविवर्जित

चहियत जिहाँ न जैसो होइ।
विधिवस जोग मिलत है सोइ॥
रसदूषन मै कोविद गावै।
प्रकृति विवर्जित नाम कहावै॥

वही, ६।१४६

ठ – समयविरुद्ध

समै विरुद्ध जु वर्नियै, कहै और की ओर।
रजनी चकवा मुदित मन, वासुर[2] होत चकोर॥

ड देशविरुद्ध

देशभाव अनमिलत कै, देसविरुद्धा भाग।
मारूथल मै सोभियत, वृजिवेन वाजत डाग॥

वही, ६।१५३

१ मुख्य। २. वासर = दिन।

ढ – अनंगस्याभिधान

जिहाँ अंग जो ना चहे, सो तिहाँ ही दरसाय।
दोष अनंग अविधान सों, वर्नत है कविराय ॥
वही, ६।१५४

ण – अमत नाम रसविरुद्ध

शृंगारहि विभत्स न आनों। वीर माहि पुनि भय न वखानौ ॥
करना[1] हास सहत न कीजे। अद्भुत रौद्र मिलाव न लीजे।
ए रस जित इन रसन सों, मिलै कहूँ जो आय।
सो अमित[2] दूषन महा, कविता मे ठहराय ॥
वही, ६।१५५-१५६।

प्रतापसाहि

१.

अर्थ बोध के मुख्य मे, घात करत जो होइ।
ताको दूषण कहत हैं, शब्द अर्थ रस सोइ ॥
काव्यविलास, ६।१

२.

अनुचित मे औरे नही, रसहि बिगारन हेत।
उचित प्रसिद्ध सु वरनिये, यहै रसन को खेह ॥
वही, ६।१३५

३.

क – पदगत अरु पुनि वाक्यगत, शब्ददोष द्वै भाँति।
कहूँ सुपद के अंत मे, नित्य अनित्य विसाति ॥
वही, ६।३

ख – जही निरस रस को करें, तहाँ दोष ये जानि।
नहि विरुद्ध बाधक जहाँ, रस तह पोष वखानि ॥
वही, ७।१३६

४.

क – रस की स्वशब्द वाच्यता[3]

इहाँ रसवाच्य तो है, परन्तु शृंगार का नाम न लिनो।
वही, ६।१२२ (वृत्ति)

ख – अन्य रस दोषों के उदाहरण

रस को अकस्माद विच्छेद वीर चरित नाटक मे है। रस को अकस्माद विस्तार वेणीसहार नाटक में है। अगी को विस्मरण रत्नावली में है।
काव्यविलास, ६।१३६ (वृत्ति)

*

१. करुणा। २. अमत। ३. भ्रांतिवश प्रतापसाहि ने 'स्वशब्दवाच्यता' को ही रसदोष मान लिया है।

परिशिष्ट १

[१६५० वि० सवत् के परवर्ती वे आचार्य जिन्होंने रीतिकालीन शैली और परपरा के अनुसार ही काव्यग्रथ रचकर अपने रसविचार प्रस्तुत किए। ऐसे आचार्य कवियों में प्रमुख हैं जगन्नाथप्रसाद 'भानु' और बिहारीलाल भट्ट]

रस का स्वरूप और अभिव्यक्ति

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

१.

यह (अलौकिक) आनद प्रायः कवि के काव्यरचना की कुशलता तथा अनूठी उक्ति को जानकर उत्पन्न हुआ करता है। रस काव्य की आत्मा है, कहा है 'वाक्यं रसात्मकं काव्य'।

रसरत्नाकर, पृ० २

२.

रस का प्रादुर्भाव (विकास) तभी होता है, जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की सहायता से स्थायी दशा परिपक्व दशा पर पहुँचती है—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः॥

इनमें विभाव (कारण) अनुभाव (कार्य) और सचारी भाव (सहायक) हैं और जिसमें रस स्थिति रहती है वह स्थायी भाव है।

वही, पृ० २

बिहारी लाल भट्ट

१.

श्रव्य काव्य मे सरस रस, ध्वनि को भेद सुठाम।
अब आगे बरनन करत, रसगत व्यंग ललाम॥

साहित्यसागर, तरंग ५, पृ० १५२।

२.

यहाँ अलक्ष्यक्रम जोई, भाव बीच रस व्यंजित होई॥
ज्यों अन्वय संबंध बखानों, भाव बीच रस तैसहिं जानो।
रसगत व्यंग नाम सो लीजे, तासें रस को बरनन कीजे॥

साहित्यसागर, तरंग ५, पृ० १५३

३.

जैसे रसना से खटरस को सरस रस,
परस हरप चारु चोंप चखियतु हैं,
तैसे नवरस देखे सुने चित पावै चैन,
ब्रह्मानंद तुल्य तामे रुचि रखियतु हैं।
कहत 'विहारी' पर निरगुन रूप वाको,
लख मे न आवै कैसो न्याय नखियतु है;
तासें वह भावन विभाव अनुभावन तें
होत है सगुन ताकी लीला लखियतु हैं।

वही, तरंग ५, पृ० १५३

४.

अनुभाव और विभाव अरु द्वै भाँति संचारी जहाँ।
मिल थाई को पूरन करें सो सुकवि रस जानो तहाँ॥
यह थाई ही रस रूप है पर फेर इतनो पाव है।
उन चार मिल ये होत रस उन चार विन दो भाव॥

वही, त० ५, पृ० १६१

५.

थाई जो थिर रहत वीज ताकों अनुमानो,
आलंवन जिहि नाम सोई पृथ्वी पहिचानों।
उद्दीपन जल रूप ताहि सिंचन कर पावे,
पुनि अनुभाव अवश्य आय अंकुरित वनावे।
कह कवि 'विहार' इन सवन को जवहि जोग पूरन परै,
सो सरस सुखद रस-विटप वर नव सुरूप धारन करै।[1]

वही, न० ५, पृ० १५४-५५

६.

यह शृंगार सरस रस जिनके आश्रय से सरसानो,
ते प्रियतम अरु प्यारी यामे आलंवन पहिचानो।
उद्दीपन पट् ऋतु की सुखमा 'भूषन' 'फूलन माला'
सुंदर सखा, सखी अरु दूती वोलन वचन रसाला।

१. प्रभाव के लिये द्र० देव के शब्दरसायन का प्रकाश ३, पृ० २८ का अंश।

कविता आदि राग रागिनि बहु उपवन गमन जतायो,
सर, सरिता, सरसीरुह सुखमा, सुखद समीर सुहायो।
चंदन, चद्र, चाँदनी चमकनि, अतर सुगंध निहारी,
जे शृंगार रस के उद्दीपन वरणै विविध 'विहारी'।
अब अनुभाव कहत यहि रस के पाठकगण चित दीजे,
नैनन अरु आनन प्रसन्नता मधुर बचन गनि लीजे।
मृदु मुसुक्यान, मनोहर सूरति, अरु संतोष सुहावन,
कारे, लाल, हरीरे, पीरे, बहुविधि रंग गनावन।
क्रियन सहित कर करन चलाबै, अरु आनँद बरसैवो,
चचल चपल चलन चक्षुन को तिरछी दृष्टि चितैवो।
वे विभाव आलंबन दीपन जे अनुभाव गनाए,
वर्ण रूप अब वर्णन कीजत जस आचार्य बनाए।[1]

साहित्यसागर, त० ६, पृ०१६५

रस के उपकरण

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

विभाव

१.

कारण रस के आहि जे, ते विभाव अवदात।
आलंबन उद्दीपनहुँ दोय भेद विख्यात॥

रसरत्नाकर, भाग २, पृ०७

२.

क – रस को है अवलंब जहँ, आलंबन है सोय।

वही, भाग २,पृ०७

ख – रम्य नायिका पेखि, उपजे भाव सिंगाररस।
रीझि रहे हरिदेखि, तिय तन छवि सुकुमारता॥

वही, भाग ३, पृ० १७

ग – नायक गुण मंदिर युवा, युवती रीझहि देख।
ललकि रही ब्रजनायिका, निरखि श्याम को भेख॥

वही, भाग ३,पृ० ४६

१. इस उद्धरण में रससामान्य का तो नहीं किंतु शृंगार रस का सांगोपांग स्वरूप उद्घाटित है।

३.

जिन्हें विलोकत ही तुरत रस उद्दीपति होत।
उद्दीपन सु विभाव है, कहत कविन के गोत॥

वही, भाग ४, पृ० ५८

४.

सखा सखी दूनी सुवन, उपवन षट्ऋतु पौन।
उद्दीपनहि विभाव मे वरणत कवि मतिभौन॥
चंद चांदनी चंदनहुँ, पुहुप पराग समेत।
यौं ही राग सिंगार सव, उद्दीपन के हेत॥

वही, भाग ४, पृ० ५८

अनुभाव

१.

कार्य रूप अनुभावतें, रस को अनुभव होत।

रसरत्नाकर, भाग २, पृ० ७

२.

जिनही तें रतिभाव को, चित मे अनुभव होत।
ते अनुभाव सिंगार के, वरणत हैं कवि गोत॥
सात्विक भाव स्वभाव धृत, आनँद अंग विकास।
इनही ते रति भाव को, परगट होत विलास॥

वही, भाग ४, पृ० ७५

३.

सहजहि अंग विकार कहँ, सात्विक भाव वखान।
ताके पुनि नव भेद गुनि, वरणत हैं मतिमान॥
स्तंभ स्वेद रोमांच कहि, वहुरि कहत स्वर भंग।
कंप वरणि वैवर्ण्य पुनि, आँसू प्रलय प्रसंग॥
अंतरगत अनुभाव मे, आठहु सात्विक भाव।
जृंभा नवम वखानही, कोऊ कवि सतभाव।

वही, भाग ४, पृ० ७५

सचारी भाव

१.

थाई भावन को जिते, अभिमुख रहे सिताव।
जे नव रस में संचरै, ते संचारी भाव॥
थाई भावन में रहत, या विधि प्रगट विलात।

ज्यों तरंग दरियाव में, उठि उठि तितहि समात ॥
थिर ह्वै थाई भाव तव, परिपूरण रस होत।
थिर न रहत रसराज लौ, संचारिन के गोत ॥
थाई संचारीन को, है इतनोई भेद।
ते संचारिन के कहत, तैंतिस नाम निवेद ॥

वही, भाग ४, पृ० ८४

२.

क – असूया

सहि न सके सुख और को, यहै असूया जान।
अवध बधावा लखत ज्यों, कैकेइ दुख मान ॥

वही, पृ० ८५

ख – विषाद

हो उद्योग असार जब, लहै विषाद अनंत।
अब न धीर धारत बनत, सुरत बिसारी कंत ॥

वही, पृ० ८७

स्थायी भाव

१.

रस की थिरता जाहि में, थायि भाव उद्योत।
सो विभाव अनुभाव पुनि, संचारी मिलि होत ॥
थायिभाव रति हास पुनि, शोक क्रोध उत्साह।
भय ग्लानिहुँ विस्मय बहुरि निर्वेदहिं चितचाह ॥

रसरत्नाकर, भाग २, पृ०७

२.

क – रति

होत अपूरब प्रीति जहँ, सोई रति सह नेक।
जनकनंदिनी को अचल, रघुपति पद नित प्रेम ॥

वही, पृ० ६८

ख – हास[1]

रूप बचन बेढंग कछु, लखि सुनि आवत हास।
चारि पदारथ पाइये, एक भंग की आस ॥

वही, पृ०६६

१. हास के भेदोपभेद भी वर्णित हैं—उत्तम, मध्यम, अधम आदि।

ग – शोक

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परगास।
सब के प्यारे राम को, क्यों दीनो बनवास॥

वही, पृ०१००

घ – क्रोध

अपमानादिक ते जहां, क्रोध हिये मजबूत।
वक्ष अक्ष को फारिहौ, तौ अंजनि को पूत॥

वही, पृ०१००

ङ – उत्साह

अपर वीर को देखिकै, चाव बढ़ै चित आय।
मेघनाद को लखि लखन, हरपे धनुष चढ़ाय॥

वही, पृ० १००

च – भय

भय विकृत कछु रूप लखि, रक्षा कीन प्रतीति।
लखि बाढ़त बामन तनहिं, बाढ़ो बलि हिय भीति।

वही, पृ०१०१

छ – ग्लानि[1]

ग्लानि घृणित लखि वस्तु को, जहँ चित जाय घिनाय।
सूपनखाहिं विरूप लखि, सिय मुख लीन छिपाय॥

वही, पृ०१०१

ज – आश्चर्य

विस्मय युत लखि सुनि कछू, अचरज रह उर छाय।
मृदुल गात क्यों सावरो, गिरिवर लीन उठाय॥

वही, पृ० १०१

झ – निर्वेद

हो विरक्त संसार सों, सो निर्वेद विचार।
यह असार संसार मे, राम नाम है सार॥

वही, पृ०१०२

१. जुगुप्सा।

ञ – स्नेह

पुत्रादिक की प्रीति जो, सोई नेह कहात।
गोद लिये अति प्रेम सों, हरि मुख चुंबत मात॥

वही, पृ० १०२

विहारीलाल भट्ट

विभाव (आलंबन और उद्दीपन)

१.

मुख्य हेतु है थाइ को, ताकों कहत विभाव।

साहित्यसागर, तरंग ५, पृ० १५४

२.

सो बिभाव द्वै भाँति बखानों, प्रथम भेद आलंबन जानो।
द्वितिय भेद उद्दीपन लहिए, अब दोहुन के लक्षण कहिए॥
थाई को अवलंबन भावै, सो आलंबन भाव कहावै।
उद्दपित रस जासें होई, भाव कहत उद्दीपन सोई॥

वही, त०५, पृ०१५४

३

पूर्ण अंगमय जानिए, पूर्ण नायिका जोत।
फिर जस जस भेदहि बढ़ै, तस तस अंतर होत॥
जैसे वृहत् अकास है, पूर्ण प्रकाश लखात।
घट मठ भेद उपाधि से, भिन्न नाम दरसात॥
पूर्ण अंग तिमि नायिका, ताके भेद तमाम।
जाति गुणादिक कर्म से, अलग अलग ये नाम॥[1]

वही, त०६, पृ० १६७

अनुभाव और सात्विकभाव

१.

अनुभव थाई को करत होत नाम अनुभाव।

वही, त०५, पृ०१५४

१. भट्ट जी नायिका को पूर्ण मानते हैं, आकाश की तरह। जैसे उपाधिभेद से घटाकाश, मठाकाश आदि नाम उस पूर्ण आकाश के होते हैं, उसी तरह जाति, गुण, अवस्था आदि के भेद से नायिका के भी असंख्य नाम हो जाते हैं।

२.

अब कहत सात्विक भाव जो लख परत ऊपर अंग ही,
इक थभ पुनि रोमांच वेपथु स्वेद अरु स्वर भंग ही।
कह अश्रु सप्तम प्रलय अरु वैवर्ण्य नाम प्रमानिये।
यहि भाँति सात्विक भाव के यह आठ भेद वखानिये॥

वही, त०५, पृ० १६०

३.

थकित अंग सो थंभ है रोम रोम उठ अंग।
वेपथु[1] आवह कंप कछु स्वेद स्वेद कौ ढंग॥
अन्य वर्ण वैवर्ण्य है अश्रु नयन जल रंग।
चेत, अचेतन सम, प्रलय, गद्‌गद स्वर स्वर भंग॥
पूरब भावादिकन के वरणें लक्षण अग,
उदाहरण लख लीजियौ निज निज रस के संग।

वही, त०५, पृ०, १६१

सचारी भाव

१.

सचालन करिवौ करौ संचारी ते मान।

साहित्यसागर, त०५, पृ०१५४

२.

क – निर्वेद

दृश्य वस्तु सव मिथ्या जानो। यहे भाव निर्वेद वाखनो।

ख – ग्लानि

असहनता निरवलता होई। ताकों ग्लानि कहत सव कोई।

ग – असूया

पर उतकर्ष सहन ना होवे। ताहि असूया कविजन जोवे।

घ – मद

जहँ उत्कर्ष हर्ष को राखै। मद संचारी तिहि कवि भाखै।

ङ – शका

जहँ अनिष्ट की होय अवाई। ताहि कहत शंका कविराई।

१. कंप।

च – आलस्य

बैठत उठत न मन रुचि पावै। ताकौ आलस नाम कहावै।

वही, त०५, पृ० १५७

छ – मोह

सुध बिसरै चेतनता गोवै। मोह नाम पुनि ताको होवै।

ज – व्रीडा

जो निश्चित क्रिया अरु क्रीडा। तामें सकुचावै सो व्रीडा।

झ – औत्सुक्य और निद्रा

क्रिया सकल इंद्रिन की जोई। एक बार आरभै सोई॥

औत्सुक्य सो नाम बखानौं, चित्त। त्वचा, थिर निद्रा जानौं॥

वही, त०५ पृ०१५८

ञ – अवहित्थ

आकारहु व्यवहारहु दोई। छिपै जहाँ अवहित्थ सु होई॥

वही त०५, पृ०१५६

स्थायी भाव

१.

निज निज रस में थिर रहैं ते थाई पहिचान।

वही, त० ५, पृ० १५४

२.

क – हास्य

वेष बनाय करहि कछु कौतुक तैसहि बचन सुहावै।
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि हास्य कहावै।

ख – शोक

जहँ वियोग हो पिय पदार्थ कौ मिलन आश नहि लावै।
तब मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि शोक कहावै।

ग – क्रोध

मन प्रसन्न, वह तिरस्कार भयँ प्रतिकूलत्व जतावै।
तन मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि क्रोध कहावै।

घ – उत्साह

दान, दया, अरु धर्म, वीर में परम प्रवृत्ती आवै।
तब मन की जो विकृति अपूरन सो उत्साह कहावै।

ङ – भय

प्रेतादिक सर्पादि व्याघ्र तन अविकृत विकृत लखावै।
तव मन की जो विकृति अपूरन सो भय भाव कहावै।

साहित्यसागर, त०५, पृ०१५५

च – घृणा

दर्शन पर्शन[1] सुमिरन जहँ कहुँ वस्तु घृणित को आवै।
तव मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि घृणा कहावै।

छ – विस्मय

चमत्कार से भरी वस्तु को लखै, सुनै, सुधि आवै।
तव मन की जो विकृति अपूरन विस्मय सोइ कहावै।

ज – शमन[2]

तृष्णा अंतःकरण चतुर की जब निवृत्ति हो जावै।
तव मन की जो विकृति अपूरन सो पुनि शमन कहावै।

वही, त० ५, पृ० १५६

*

१. स्पर्श। २. शम।

रसभेद

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

१.

रस कहिये नव भाँति के प्रथम कहत शृंगार।
हास्य करुण पुनि रौद्र गनि वीर सु चारि प्रकार॥
बहुरि भयानक जानिये, पुनि वीभत्स बखान।
अद्‌भुत अष्टम नवम पुनि, शांत रसहि उर आन॥

रसरत्नाकर, भाग २, पृ० ७

रस यथार्थ में नव ही हैं दृश्य काव्य में शांत रस उपयुक्त नहीं माना गया अतएव ८ ही भेद हैं। श्रव्य काव्य में शांत रस उपयुक्त है अतएव ९ भेद माने हैं। वात्सल्य तो प्रेम और दया की प्रधानता के कारण शृंगार और करुण का ही अंग प्रतीत होता है। पुत्रादिकों के प्रति जो स्नेह भाव है सो वत्सल कहलाता है जैसे पुत्रवत्सल, भक्तवत्सल, शरणागतवत्सल इत्यादि। कोई भक्तिरस अलग मानते हैं परंतु वह भी शात रस के अंतर्गत है। नाटकादि मे सख्य और दास और प्रेयान् तीन रस और पाए जाते हैं परतु वे भी शांतरसातर्गत प्रतीत होते है। हाँ, प्रेयान् कभी कभी भावानुसार शृंगार और करुण मे भी वर्णित होता है। विचार पूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि शृगार से हास्य की, रौद्र से करुण की, वीर से अद्‌भुत की और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति है। शात रस पृथक् है।[1]

रसरत्नाकर, प्रथम भाग, पृ० ३

२.

जाको थायिभाव रति, सो शृंगार सुहोत।
मिलि विभाव, अनुभाव पुनि संचारिन के गोत॥
रति कहियतु जो मन लगनि, प्रीति अपर परजाय[2]।
थायी भाव शृगार के, भल भाषत कविराय॥
परिपूरण थिरभाव रति, सो शृंगार रस जान।
रसिकन को प्यारो सदा, कविजन कियो बखान॥

१. भानु जी ने खड़ी बोली गद्य का माध्यम अपना कर रसांतर्भाव का विवेचन पस्तुत किया है। परंतु यह विवेचन चिंत्य है।

२. पर्याय।

आलंवन शृंगार के, तिय नायक निरधार।
उद्दीपन सब सखी सखा, बन बागादि विहार॥
हाव भाव मुसुक्यानि मृदु, इमि औरेउ जु विनोद।
है अनुभाव शृंगार नव, कविजन कहत समोद॥
उन्मादिक सचरत तहँ, संचारी है भाव।
कृष्ण देवता श्याम रँग, सो शृंगार रसराव॥

वही, भाग ३, पृ०८

३.

क – सो शृंगार द्वै भाँति को, दंपति मिलन सँयोग।
अटक जहाँ कछु मिलन की, सो शृंगार वियोग।

रसरत्नाकर, भाग ३, पृ० ८

ख – पिय प्यारी को मिलन जहँ सो सँयोग शृंगार।
सोहत ललना लाल सँग, चक चकई अनुहार॥

वही, भाग ३, पृ० ६

ग - जहँ बिछुरत तिय पीय सो है वियोग शृंगार।
हरि के बिछुरे राधिका, तजे सकल शृंगार॥

वही, भाग ३, पृ० १०

घ – हो आतुरता मिलन की, सो पूरव अनुराग।
मन मोहन मिलिहैं जबहिं, अलि तबही बड़भाग॥

वही, भाग ३, पृ०१०

ङ – लखि पिय को अपराध कछु, प्रिया ठानती मान।
प्रिय दृग लाली लखि तिया, तानहिं भौंह कमान॥

वही, भाग ३, पृ० १२,

च – सो प्रवास दुख भोगती, जिनके पिया विदेस।
कहा कीजिये हे अली, हरि पठियो संदेस॥

वही, भाग ३ पृ० १३,

४.

थाई जाको हास्य है, वहै हास्य रस जानि।
तहँ कुरूप कूदब कहब कछु विभाव ते मानि॥
भेद मध्य अरु ऊँच स्वर, हँसिबोई अनुभाव।
हरष चपलता और हू, तहँ संचारी भाव॥

स्वेत रंग रस हास्य को, देव प्रथम पति जास।
ताको कहत उदाहरण, सुनतहि आवे हास॥

वही, भाग ३, पृ० ४६

५.

आलंबन प्रिय को मरण, उद्दीपन दाहादि।
थाई जाको शोक जहँ, वहै करुण रस यादि॥
रोदन महिपतनादि[1] जहँ, वरणत कवि अनुभाव।
निर्वेदादिक जानिये, तहँ संचारी भाव॥
चित्र कबूतर के बरण, वरूण देवता जान।
या विधि को या करुण रस, वरणत कवि कवितान॥

वही, भाग ३, पृ० ४८,

६.

थाई जाको क्रोध अति, वहै रौद्र रस नाम।
आलंबन रिपु रिपु उमँड़, उद्दीपन तिहि ठाम॥
भृकुटि भंग अति अरुणाई, अधर दसन अनुभाव।
गरब चपलता औरहू, तहँ संचारी भाव॥
रक्त रंग रस रौद्र को, रुद्र देवता जान।
ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान॥

वही, भाग ३, पृ० ४६

७.

जा रस को उत्साह शुभ, है इक थाई भाव।
सुरस वीर है चार विधि, कहत सबै कविराव॥
युद्धवीर इक नाम है, दयावीर बिय[2] नाम।
दानवीर तीजो सुपुनि, धर्मवीर अभिराम॥
युद्धवीर को जानिये, आलंबन रिपु जोर।
उद्दीपन ताको तबहि, पुनि सेना को सोर॥
अंग फरकन दृग अरुणाई, इत्यादिक अनुभाव।
गरब असूया उग्रता, तहँ संचारी भाव॥
चंद्र देवता वीर को, कुंदन वरण विशाल।
ताको कहत उदाहरण, सुनि जन होत खुशाल॥

वही, भाग ३, पृ० ५०

१. धरती पर लोटना। २. दूसरा।

८.

जाको थायी भाव भय, वहै भयानक जान।
दृश्य भयंकर गजव कछु, ते विभाव उर आन॥
कंपादिक अनुभाव तहँ संचारी मोहादि।
काल देव कोयला वरण, सुभयानक रसभादि॥[1]

वही, भाग ३, पृ० ५३

९.

थायी जासु गलानि है, सो वीभत्स जनाव।
पीव मेद मज्जा रुधिर, दुर्गधादि विभाव॥
नाक मूँदिवो कंप तन, रोम उठव अनुभाव।
मोह असूया मूरछा, ये संचारी भाव॥
महाकाल सुरनील रग, सो विभत्स रस जानि।
ताको कहत उदाहरण, रस ग्रंथनि उर आनि॥

वही, भाग ३, पृ० ५४

१०.

जाको थायी आचरज, सो अद्‌भुत रस गाव।
असंभवित जेते चरित, तिनको लखत विभाव।
वचन विचल बोलनि कँपनि, रोम उठनि अनुभाव।
वितरत शंका मोह ये, तहँ संचारी भाव॥
जासु देवता चतुरमुख, रंग वखानत पीत।
सो अद्‌भुत रस जानिये, सकल रसन को मीत॥

रसरत्नाकर, भाग ३, पृ० ५५

११.

सुरस शात निर्वेद है, जाको थायो भाव।
सत संगति गुरु तपोवन, मृतक समान विभाव॥
प्रथम रूमाचादिक तहाँ, भाषत कवि अनुभाव।
धृत मति, हरपादिक कहे, शुभ संचारी भाव॥
शुद्ध शुक्ल रंग देवता, नारायण है जान।
ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान॥

वही, भाग ३, पृ० ५६

१. रासभ = गदहा आदि।

विहारीलाल भट्ट

१.

सो रस मुख्य प्रथम द्वै विधि कौ लौकिक एक गनायौ।
दूजौ नाम अलौकिक याकों भरतादिक ठहरायौ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधहु इंद्रिय विषय बखानें।
इनसें जो प्रत्यक्ष प्रबोधित लौकिक तिहि कवि माने॥

साहित्यसागर, तरग ५, पृ० १६१

२.

मन से अनुभव होय, अलौकिक तीन भेद हैं ताके।
स्वाप्निक प्रथम स्वप्न मे, व्यापित ज्यो चरित्र ऊषा के।
मानोरथिक मनहिं से कल्पित, उपनायक पुनि तीजो;
काव्य पदारथ से प्रगटत है, यह लक्षण लख लीजो।

वही, तरग ५, पृ० १६१

३.

सो रस मुख्य अष्ट विधि जानो। प्रथम श्रृंगार हास्य पुनि मानों।
करुणा रौद्र वीर निरधारौ। बहुर भयानक नाम विचारौ।
सप्तम पुनि वीभत्स बखानौ। अष्टम अद्‌भुत को पहिचानों।
नवम शांत पुनि कबियन भाखे। भरतादिक ने आठहि राखे।

वही, तरग ५, पृ० १६२

४.

मत नवीन आचार्य गनाये। भक्ति पंच रस और गनाये।
प्रथम नाम श्रृंगार बखानों। दूजौ नाम सख्य रस जानों।
तीजो दास्य नाम दरशायो। वात्सल्य चौथो बतरायो।
पंचम शांत नाम रुचि राखे। भक्तन पंच पच रस भाखे।
तिनमे शात श्रृगार सुहावें। ये उन नव रस मे मिल जावे।
दास्य सख्य वात्सल्य बताये। तीन शेष यह पृथक सुहाये।
भाव सहित अनुभाव प्रकारा। है इनको विस्तार अपारा।
सूक्ष्म रूप यामे लख लैहो। पूर्ण रूप सतन ढिग पैहौ।

वही, तरंग ५, पृ० १६२

५.

रस की जहाँ प्रधानता, रसध्वनि सो ठहरात।
केवल भाव प्रधान सें, भावध्वनि हो जात॥

सब भावन में मुख्य ही, रस नृप रहत प्रधान।
संग में सोहत अंगवत भावभृत्य अनुमानै।
(अप्रधान होकर)
कौनहु कौनहु समय पर भावहि होत प्रदीप।
ज्यों अखेट[1] आगे छता[2], पाछें चलत महीप।

वही, भाग २, तरंग ६, पृ० ३३६

६.

क – जहँ कहुँ अनुचित रीति से रसवर्णत रस होय।
रसाभास ताकौं कहत कवि कोविद सब कोय॥
ख – जहाँ कहूँ जिहि भाव को पूर्ण शांति ह्वै जाय।
भावशांति ताकौं कहत सुकविन के समुदाय॥
ग – जहाँ कहूँ जिहि भाव को उदय होय जिहि ठौर।
भावोदय तासो कहत कवि-कोविद-सिरमौर॥
घ – जुगलभाव इक साथ हो मिले परस्पर आय।
भावसंधि तासों कहत कवि-पंडित - समुदाय॥

वही, भाग १, तरंग ६, पृ० ३३७–३८

*

१. शिकार। २. सहायक दल।

परिशिष्ट—२

[विहारी लाल भट्ट का आध्यात्मिक शृ गार और आध्यात्मिक ना
निरूपण समस्त रीतिकालीन साहित्य मे अनन्य होने के साथ ही यह अं
पूर्ण भी है। अतएव इस अश को स्वतत्र रूप से यहाँ प्रस्तुत किया जा
बिहारी लालभट्ट के इस निरूपण पर वैष्णव साहित्य का प्रभाव भी नितात

बिहारी लाल भट्ट

त्रयोदश तरंग

आध्यात्मिक नायिका भेद।

दोहा

प्रनवहुँ प्रथम अखड अज राम सर्व-सुख - सार।
गुरू अभिवंदन कर कथहुँ आध्यात्मिक सिंगार॥

चांद्रायण

जिते जगत में दृश्य अनेकन रूप हैं;
जिते विविध विस्तार अपार अनूप हैं।
जिते रूप अरु नाम चरित गुन ज्ञान हैं;
जिते कथन स्तुति शास्त्र प्रबध पुरान हैं।
तिन सब मे त्रय भाँति भेद ज्ञानात्मकं,
आधिभौतिक अधिदैव और आध्यात्मकं॥
याके भेद अगाध, न सब पहिचानिहैं;
जिनके हिये विवेक, नेक सोइ जानिहैं।
त्रेता में श्रीराम मनुज तन धार के,
किए मानुषी कार्य चरित्र सम्हार कैं।
ते चरित्र रचि संभु-उमा-संवाद में;
आध्यात्मिक मे कथे सु इष्ट-प्रसाद मे।
राम जन्म से और राज्य अभिषेक लौं;
घट ही में सब घटित करै सत वेष लौं॥
सार तत्व को रहस दिव्य दरसाव है;

कृष्ण सच्चिदानंद चरित बहु कीन है,
राचे रास-विहार सुनिल नवीन है।
यह चरित्र रस केलि कृष्ण को ऐसही,
जो जैसो करि लखै, ताहि पुनि तैसही।।
जो आधिभौतिक लखौ, तो काम विकास है;
जो अधिदैविक लखौ, तो भक्त प्रकास है।
जो अध्यात्मिक लखौ, ब्रह्म विलास है;
जा में जितौ अभास, तितौ तेहि भास है।।
अध्यात्मिक मे कृष्णा आत्म पहिचानिए;
गोपी जन गुन-वृत्ति भेद बहु मानिए।
नायक आतम वही स्वामि पति जानिए;
सुघर नायिका प्रिया वृत्ति मन मानिए।
वृत्ति भेद से विविध नायिका भेद है;
समुझन लच्छन नाम सुवुध गुन वेद है।।

दोहा

जिनकौ स्वकिया, परकीया, गनिका कहत सिगार।
ते सुचि अंतःकरन की वृत्ति तीन निरधार।।

प्रथम स्वकीया वृत्ति

स्वकिया है सत वृत्ति सुद्ध जिहि रीति है;
आत्म पुरुष प्रति प्रेम वही प्रति प्रीति है।

सात्विकी वृत्ति अपना संबंध केवल आत्मा ब्रह्म से रखती हैं। इसीको सात्विक ज्ञान कहते हैं। यथा—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु विद्धि सात्विकम्।।

× × ×

सब वृत्तिन सुख रूप सवन सिरमौर है।
आतम ब्रह्म सिवाय न जानत और है।।

सोरठा

उदाहरन निरवार करत ग्रंथ वढिहै अधिक।
सूछम कहन प्रकार, बहुत समझ लें हैं सुवुध।।

द्वितिय परकीया वृत्ति

द्वितिय वृत्ति सत की गुन पद्धति त्याग कै।
वाहि तुच्छ करि रमत रजोगुन राग कै॥
ज्यों पंछी पथ छोड़ कुमारग गहत है।
चल-चलत स्रम सहत सांति नहिं लहत है॥
त्यों यह आतम ब्रह्म स्वामि तज टेक सो।
प्रीति करत यक्षादि काहु सुर एक सों॥

जब सत से रजोगुण की वृत्ति विकसित होती है, तब सतोगुण, तमोगुण, दोनों को दबाकर अपना उत्कृष्ट प्रभाव दर्शित करती है। यथा—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत!
रज: सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।
यजंते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः॥

श्रीमद्भगवद्गीता

सात्विक वृति वाले उच्चदेवों को, राजस वृत्ति वाले यक्षों, कुबेर तथा राक्षसों की पूजा करते हैं।

वाही से यह रमत प्रेम रस रंग में।
राखत प्रीति अगाध लेत सुख संग में॥
परकीया कर तत्व वास्तविक है यही।
समझत वे तत्वज्ञ बुद्धि जिनकी सही॥

तृतीय गणिका वृत्ति

तृतिय बृत्ति गनिका यह कपट सुभाव है।
रचना रचत विचित्र अनेकन भाव है॥
करत मोह बस वेग सुबुद्धि हिरात है।
उभय लोक जिहि हानि लाभ नहिं ज्ञात है॥
भूत प्रेत इन माँहि सनेह बढ़ाय कै।
पूजत अपनी आस जगत भरमाय कै॥
यह गनिका तम वृत्ति अधम है याहि सें।
जो याके सँग रमत, रमत यह जाहि सें॥
ताकी तबहिं अवश्य अधोगति होति है।
कहत सकल बुधिवान लखी जिन जोति है॥

यह गनिका को तत्व वास्तविक है यही।
समुझत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही॥

अवस्था वृत्ति

मुग्धा अरु मध्या बहुरि प्रौढा परम प्रवीन।
सब वृत्तिन की जानियै यहै अवस्था तीन॥

छंद

वृति उदय जब होत, होति मुग्धा तवै,
थिरत जब कछु लहत, तबहि मध्या फबै।
जब निज कर्मन मध्य, कुसलता लहति है,
तब प्रौढा कौ रूप वृत्ति वह बनति है।
सब वृत्ति जब प्रौढ रूप कौं धरति है,
तब ही पूरन ब्रह्म भाव कौं भरति है।
तिहि अवसर पर होत जगत अध्यास है,
पर निर्द्वंद न होत द्वंद कौ भास है।
जे कछु अनुभव करत, जिन्हैं यह ज्ञान है,
प्रौढा को सुख अल्प तिया का जान है।

[इस प्रकार जितनी नायिकाएं, उतनी वृत्तियाँ है। पर सभी भेदों को न कह कर सतित रूप में मुख्य नायिका भेदों पर हो संघटित किया गया है।]

अथ वृत्यष्ट अवस्था

अष्ट नायिका

अष्ट अवस्था बृत्ति को कहियत यों समुझाय।
कहत सूक्ष्म ससुझत बहुत, जिनहि लक्ष अधिकाय॥

छंद

अंत.करन पवित्र बृत्ति जब चहत है,
काम क्रोध मद मोह बिकारन तजत है।
सतगुन दीपप्रकास दंभतम मेटि कै,
भूषन सत्व समस्त धार चित चाह से।
रहत प्रिया लौ लाय अधिक उत्साह से।
चौद्रिग संपति दिव्य दिव्य दरसाय कै,
को कहि वरनै पार रही छवि छाय कै।
जेतौ फिर आनंद बृत्ति हिय ज्ञात है,
सो वह धनधन समय कहो नहि जात है।

यों सब साज सजाय बुद्धि थिर करत है,
मिलै मोंहि पिय आज चित्त यो चहत है।
जो मुमुक्ष-पद हेत लेत अधिकार है,
यहि विधि ताकी वृत्ति होत जग सार है।

बासक सज्जा आदि लक्षण

वासकसज्जा तत्व वास्तविक है यही,
समुझत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।
आत्मलक्ष,पतिप्राप्ति होत नाही जबै,
सो वृत्ति उकताति होति उक्ता तबै।
तदपि न होवै प्राप्ति सर्व-सुख-सारिका,
लक्ष ओर चल जाति होति अभिसारिका।
पहुँचत लक्ष समीप भास नाँहि होवही,
विप्रलब्ध तब होत वृक्ष बुधि होवही।
पुनि बोते कछु काल लखत वह जोत है,
खडित पावन लक्ष खंडिता होत है।
लक्ष पूर्ववत लखो नही अनरीति है,
रहो न पुनि वह प्रीति न वह परतोति है।
गई जहाँ परतोति प्रीति हूँ जात हैं,
फिर पिव से ह्वै विमुख जगत भरमात है।
याने बासें कियो फेर एक वार को,
वाने वासें कियो सु कोस हजार को।
फिर पाछू पछतात कीन्ह कह रान ने,
तलफत व्याकुल फिरत दरस के कारने।
ज्यों दरिद्र पथ माँहि परी निधि पावही,
काहू विधि खोजाय ध्वनित पछतावहीं।
ज्यो मछली जलकूद थलह बिलगात है,
पुनि जल भेंटन हेत अधिक तड़फात है।
त्यों यह बंचित वृत्ति पतिहि पछतात है,
कलहांतरिता होत गुरुन को ज्ञात है।
कलहंतरिता लखहु वास्तविक है यही,
जानत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।

दोहा

जबहि वृत्ति वह लक्ष से विवस विमुख ह्वै जात।
तब सत्ता व्यवहार में परतन मन पतियात॥

पुनि ज्यो तिय प्रिय सखी की लै सहाय सुख लेत।
त्यो यह सतगुरु चरन के वृत्ति बढ़ावन हेत॥
तव लगि ताकी लक्ष वह दूर देस चलि जात।
अनभ्यास के कारने अंत अंतर अधिकात॥
मन वृत्ती चचल अधिक थिर न रहत कछु पास,
याके निज वस करन कौ है उपाय अभ्यास।

छंद

दूर देस चलि जात लक्ष नाहिं मिलत है,
प्रोषितपतिका रूप वृत्ति तव वनत है।
तब गुरु ज्ञान लखाय पंथ निरवान की,
तब वह बीतै पूर्ण अवधि अज्ञान की।
वहुरि लक्ष कौ उदय होत सुखसार है,
दरसत आत्मप्रकास अखड अपार है।
आवत लक्ष समक्ष उच्च सुख लहति है,
आगतपतिका रूप वृत्ति तव वनति है।
फिर वाकौ सुख वही अनुभवी लै सकै,
ज्यों गूँगौ गुड़ खाय, स्वाद नाहि कै सकै।
जब वह आतम लक्ष स्ववस निज करत है,
स्वाधिनपतिका रूप वृत्ति तव वनत है।
वृत्ति सगुन की होय तो प्रभु वस रहत है,
जसजस चाहत भक्त प्रभु तस करत है।
भक्तन कौ सुख पाय चरित बहु करत है,
भक्तन इच्छा पाय सगुन बपु धरत है।
निर्गुन सेवी होय तो नित्य प्रकास है,
लच्छन छोड़त साथ रहै नित भास है।
स्वाधिनपतिका तत्व वास्तविक है यही,
जानत वे तत्वज्ञ, बुद्धि जिनकी सही।
जो इमि आतम लक्ष माँहि भरपूर है,
सो प्रभु कों नहिं दूर, न वहि प्रभु दूर है।
चाहे जग व्यवहार रचै चित चीन है,
लिप्त न वामें होत ब्रह्म लवलीन है।

साहित्यसागर, भाग २, तरंग १३, पृष्ठ ५२५–३७

*

परिशिष्ट—३

रीतिकालीन रसग्रंथों का परिचय और विवरण

क—रससामान्य निरूपक ग्रंथ

रसिकप्रिया (केशव), सुधानिधि (तोष), भवानीविलास और भाव-विलास (देव), रससाराश (भिखारीदास), रसप्रबोध (रसलीन), रसवृष्टि (शिवनाथ), रसचद्रिका (उजियारे कवि), जगद्विनोद (पद्माकर), नवरसतरग (वेनी प्रवीन), काव्यबिलास (प्रतापसाहि), रसिकविनोद (चंद्र शेखर वाजपेयी), रसरग (ग्वाल कवि), काव्यसुधाकर (रसिकविहारी), शृ गारदर्पण (नदराम), महेश्वरविलास (लछिराम) ।

ख—शृंगार और नायिकाभेद विषय ग्र थ

हिततरगिणी (कृपाराम), सु दर शृ गार (कविराज सु दर), साहित्यलहरी (सूरदास), राममजरी (नंददास), बरवै नायिकाभेद (रहीम), शृ गार-मजरी (चिंतामणि), रसराज (मतिराम), सुखसागरतरंग और रसविलास (देव) शृंगार विलास (सोमनाथ), शृंगारनिर्णय (भिखारी दास), अंग-दर्पण (रसलीन) रसचद्रोदय (उदयनाथ) ।

ग—अनेकाग निरूपक ग्रंथ

कविकुलकल्पतरु (चिंतामणि), रसरहस्य (कुलपति मिश्र), काव्य-रसायन अथवा शब्दरसायन (देव), रसिकरसाल (कुमारमणि), रसपीयूषनिधि (सोमनाथ), काव्यनिर्णय (भिखारीदास), रूपविलास (रूपसाहि), कविता-रस-विनोद (जनराज), रसकल्लोल (करन कवि), व्यग्यार्थकौमुदी (प्रताप साहि) ।

उद्धरित ग्रथों का सक्षिप्त परिचय

१—केशव : रसिकप्रिया और कविप्रिया

केशव ने 'रसिकप्रिया' की रचना रसनिरूपण के लिये १६४८ विक्रम संवत् में की थी। उन्होंने ग्र थ के आरंभ में इसके रचनाकाल को सूचित करते हुए लिखा है—

> संवत सोरह से वरष, बीते अठतालीस।
> कातिग सुदि तिथि सप्तमी, वार बरनि रजनीस॥

रसिकप्रिया, १।११

कविप्रिया की रचना इसके दस वर्षों के बाद १६५८ विक्रम संवत् में इन्होंने की। इसके आरंभ में भी समय का साक्ष्य है—

प्रगट पंचमी को भयो, कविप्रिया अवतार।
सोरह सै अठावना, फागुन सुदि बुधवार॥

कविप्रिया, १।४

कविप्रिया अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आधारभूमि पर खड़ी है। यह कविशिक्षापरक अनेकागनिरूपक ग्रंथ है। अतएव एक साथ ही इस ग्रंथ में कवित्त-दूषण (काव्यदोष), कविव्यवस्था (कवियों के भेद), कविप्रसिद्धि, कविरीति, अलंकार, काव्यभेद आदि सभी काव्यशास्त्रीय तत्वों एवं विषयों का प्रतिपादन किया गया है। अब ये दोनों पुस्तकें 'केशव ग्रंथावली' के अंतर्गत हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हो गई है। ग्रंथावली के संपादक हैं प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

२—चिंतामणि : कविकुलकल्पतरु

इस पुस्तक का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से जनवरी सन् १८७५ ई० में हुआ था। यह एक अनेकागनिरूपक ग्रंथ है। इसमें कुल २०६ पृष्ठ हैं और समस्त ग्रंथ ८ प्रकरणों में विभक्त है। ग्रंथ के अंत में लिखा है—'हस्ताक्षर चंडीदत्त ब्राह्मण कान्यकुब्ज'। ग्रंथरचना का उद्देश्य बताते हुए चिंतामणि ने लिखा है—

जे सुरवानो ग्रंथ हैं तिनको समुझि विचार।
चिंतामनि कवि कहत है भाषा कवित विचार॥

कविकुलकल्पतरु, १।३

यह ग्रंथ प्राचीन प्रकाशन होने के कारण दुर्लभ तो है पर पुराने पुस्तकालयों मे उपलब्ध है। नागरीप्रचारिणी, काशी के पुस्तकालय में प्राप्त है।

३—तोष : सुधानिधि

तोष के सुधानिधि का प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १८९२ ई० मे हुआ था। इसके बाद प्रायः न तो इसका कोई दूसरा सस्करण हुआ और न कोई अन्य प्रकाशन ही। दुर्लभ होने पर भी ना० प्र० सभा पुस्तकालय जैसे प्राचीन ग्रंथों के सग्रहालय में उपलब्ध है।

इस ग्रंथ में दोहों और कवित्तों को मिलाकर कुल ५५७ छंद हैं। अंत में ३ ऐसे दोहे भी हैं जिनमें संख्या नहीं दी हुई है। यदि उन्हें भी जोड़ लें तो पूरी सख्या ५६० तक पहुँच जाती है। तोष ने 'सुधानिधि' का रचनाकाल बताते हुए कहा है—

संवत् सत्रह सै वरष गो इक्यानबे बीति।
गुरु असाढ़ की पूर्णिमा रच्यो ग्रंथ करि प्रीति॥
सुधानिधि, छ० ५५५

इसके लिपिकाल को इस प्रकार निर्दिष्ट किया है
सर श्रुति निधि महि माघवदि तिथि द्वितिया दिन मद।
लिख्यौ सुधानिधि ग्रंथ यह संत सुकविसानंद॥
वही अंतिम छंद

ग्रंथरचना का उद्देश्य इस प्रकार है—
यहि पियूषनिधि नाम, ग्रंथ रचत हौ रसिक हित।
जाको रस अभिराम, सुखद पीजियतु श्रवनमुख॥
कवित बीचिका बीच ही अर्थांतर गन जाइ।
सुलभ सुमति को कुमति को दुरलभ जानो सोइ॥
वही, ६।७

अतएव ग्रंथ प्रणयन का मुख्य उद्देश्य रसनिरूपण है और यह एक रस-सामान्य निरूपक कृतित्व है। तथापि अन्य रसों की अपेक्षा रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुसार शृंगार को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। वह इसी से स्पष्ट है कि कुल ५५७ छदों में से ४४४ छद तो शृंगारनिरूपण में खपाए गए हैं और शेष ११३ छद अन्य सभी रसों के लिये।

४—मतिराम : रसराज

मतिरामप्रणीत रसराज मतिराम ग्रथावली के अंतर्गत उपलब्ध है। मतिरा ग्रथावली का प्रकाशन गगा ग्रथागार, लखनऊ से सवत् १९९६ में हुआ था। इसका परिचयभाग भी उसी प्रकाशन से सन् १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इन दोनों ही ग्रंथों के संपादक हैं कृष्णबिहारी मिश्र।

मतिराम का रसराज एक शृंगाररस निरूपक ग्रथ है। अतएव इसमें शृंगार और उसके सभी उपकरणों का ही सोदाहरण उल्लेख है।

५— कुलपति : रसरहस्य

यह एक अनेकांगनिरूपक ग्रथ है। इसका प्रकाशन इडियन प्रेस, प्रयाग से संवत् १९५४ में हो चुका है। इसका रचनाकाल है विक्रम सवत् १७२७, जैसा कुलपति ने स्वय अपने ग्रंथ में निर्दिष्ट किया है—
संवत् सत्रह सौ बरस, अरु बीते सत्ताइस।
कादि बदि एकादसी, बार वरनि बानीस॥
रसरहस्य, ८।१०

इस ग्रंथ मे संस्कृत के आचार्य मम्मट के अनुकरण पर विविध काव्यांगों का निरूपण हुआ है। ऐसा स्वय कुलपति ने स्वीकार किया है—

जिते साज हैं कवित के, मंमट कह्यो वखानि।
ते सब भाषा मे कहे, रस रहस्य मे आनि॥

रसरहस्य, ८।१०

६—देव : रस विलास, भाव विलास, सुखसागरतरंग, शब्दरसायन आदि।

क—सुखसागरतरंग

यह बालदत्त मिश्र के द्वारा सपादित होकर लखनऊ से संवत् १६५४ में प्रकाशित हुई थी। इसकी प्राप्ति सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद, वम्बई बुकसेलर, अयोध्या जि० फैजावाद से हो सकती है। इस ग्रंथ मे कुल ८३५ छंद और २७६ पृष्ठ हैं। यह एक शृंगार-रस-निरूपक ग्रंथ हैं।

ख—भावविलास

यह ग्रंथ तरुण भारत ग्रंथावली कार्यालय, दारागंज, प्रयाग से संवत् १६६१ में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ ५ विलास हैं और कुल १६८ पृष्ठ। पद संख्या या दोहा संख्या नहीं दी गई है। यह एक रस-सामान्य निरूपक ग्रंथ है।

ग—रस विलास

यह पुस्तक भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १६०० ई० में प्रकाशित हुई थी। इसमें केवल नायिका भेदों का निरूपण है। भावविलास के बाद इसकी रचना देव ने की थी, जैसा उन्होंने स्वय कहा हैं—

रसविलास रचि ग्रंथ सौ कहत दूसरी वार।
वही नायिकाभेद सब सुनहु नवीन प्रकार॥

रसविलास, विलास ४, पद ४०।

घ—शब्दरसायन

इसका प्रकाशन हिंदी साहित्य समेलन प्रयाग से हुआ है। इसके संपादक हैं श्री जानकीनाथ सिंह 'मनोज'। यह अनेकाग निरूपक रीति ग्रंथ है। अन्य रीतियों के बीच में ही रसरीति का निरूपण किया गया है।

—ङभवानीविलास

इसका प्रकाशन भी भारतजीवन प्रेस, काशी से हुआ था। यह एक रस-सामान्य का निरूपक ग्रथ है।

टिप्पणी—देव के समस्त ग्रंथों का रचनाकाल सवत् १७४६ से सवत् १७६० बताया

जाता है। कहा जाता है कि इन्होंने ७२ ग्रंथों की रचना की थी। इनमें से २५ ग्रंथों को रीतिग्रंथ बताया जाता है। सभी रचनाएँ उ लब्ध नहीं हैं। उपर्युक्त ग्रंथ ही अधिक महत्वपूर्ण भी है और उपलब्ध भी। रसविलास उनकी अंतिम रचना है। उसका रचनाकाल स्वयं देव ने इन शब्दों में निर्दिष्ट किया है—

संवत् सत्रह से बरस और तिरासी जानि।
रसविलास दसमी विजय, पूरन सफल कलानि॥

रसविलास

७—कुमारमणिभट्ट : रसिकरसाल

कुमारमणि का रसिकरसाल एक अनेकांग निरूपक रीतिग्रंथ है। इसका प्रथम प्रकाशन श्रीविद्याविभाग, काँकरौली से संवत् १६६४ में हुआ था। इसका रचना काल संवत् १७७६ है, जैसा स्वय कुमारमणि ने अपने ग्रंथ में निर्दिष्ट किया है—

सबरस सागर कृष्ण गुन ग्यान ध्यान धरि प्रीति।
हरिवल्लभ सुत इनि रचि, कविताई की रीति॥
रससागर रवि तुरग विधु (१७७६) संवत् मधुर वसंत।
विकस्यो रसिकरसाल लखि हुलसत सुहृद वसंत॥

—रसिकरसाल, अंतिम अंश, पृ० २६६

पूरा ग्रंथ दस उल्लासों में विभक्त है। नवीनता या सिद्धांत निरूपण ग्रंथ का उद्देश्य नहीं बल्कि रीतिकालीन अन्य आचार्यों की तरह भाषा में काव्यशास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन ही ग्रंथकर्ता का अभीष्ट है। इस ग्रंथ पर मंमट के काव्यप्रकाश का ही समग्र प्रभाव है—

काव्यप्रकाश विचार कछु रचि भाषा में हाल।
पडित सुकवि 'कुमारमति' कीन्हौं रसिक रसाल॥

रसिकरसाल, ११४

८—सोमनाथ : रसपीयूषनिधि और शृंगारविलास (ह० लि०)

सोमनाथ ने १७६४ वि० सं० के लगभग उक्त रचनाएँ रची थीं। ये दोनों ही ग्रथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के याज्ञिक संग्रह में इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। रसपीयूषनिधि का लिपिकाल संवत् १७६८ लिखा हुआ है। सोमनाथ मंमट की परपरा के ही ध्वनिरसवादी आचार्य थे। अतएव इसमें ध्वनि के अतर्गत ही रसनिरूपण भी है। शृंगारविलास कोई स्वतत्र ग्रथ नहीं है। इसे रसपीयूषनिधि का ही रूपांतर समझना चाहिए।

९—भिखारीदास : रससारांश, शृंगारनिर्णय और काव्यनिर्णय

दास का पहला ग्रंथ रससाराश है। इसे इन्होंने संवत् १७९१ मे रचा था। इन्होंने स्वयं ग्रंथ में लिखा है—

सत्रह से इक्यानबे नभ सुदि छठि बुधवार।
अरवर देश प्रतापगढ़ भयो ग्रंथ अवतार॥

रससाराश, पद ५८४

शृंगारनिर्णय और काव्य निर्णय इसके बाद रच गए हैं। रससाराश रस-सामान्य निरूपक ग्रथ है, शृंगार निर्णय में केवल शृंगाररस का निरूपण किया गया है तथा काव्यनिर्णय एक सर्वांगनिरूपक रीतिग्रंथ है। इन ग्रंथों की कई हस्तलिखित प्रतियाँ तथा प्रकाशित संस्करण भी पूर्णतः उपलब्ध थे, पर अब नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी की आकर ग्रंथमाला में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित होकर दो खडों में ये ग्र थ प्रकाशित हुए हैं। प्रथम खंड में रस-साराश, शृंगारनिर्णय और छंदार्णव को समाविष्ट किया गया है तथा द्वितीय खंड में केवल काव्यनिर्णय को। काव्यनिर्णय के दो प्रकाशन पहले भी हो चुके हैं। प्रथम तो वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से सन् १९३७ ई० में हुआ था और दूसरा कल्याणदास ब्रदर्स, वाराणसी से सन् १९५६ ई० मे। भिखारीदास ग्रंथावली के दोनों खंड जो ना० प्र० स० काशी से प्रकाशित हुए हैं, वे क्रमशः सं० २०१२ में और सं० २०१४ में।

१०—रसलीन : रसप्रबोध

रसलीन (या सैयद गुलाम नबी) ने रसप्रबोध, अंगदर्पण और नायिका-भेद नामक तीन पुस्तकें लिखी थीं। इनमे से रसप्रबोध ही रस-सामान्य-निरूपक ग्रंथ है। इस ग्रंथ का प्रकाशन १८९५ ई० में भारतजीवन प्रेस, काशी से हुआ था। रसप्रबोध की रचना रसलीन ने १७९८ विक्रम सवत् में की थी। उन्होंने स्वयं लिखा है—

सत्रहसै अट्ठानवे मधुसुदि छठ बुधवार।
बिलगराम राम में आइके भयो ग्रंथ अवतार॥

रसप्रबोध, ३

इस पुस्तक में कुल १४० पृष्ठ हैं तथा ११५५ दोहे। रसलीन का दावा है कि इस लक्षण ग्रंथ को पढ़ लेने के अनंतर पाठक को दूसरे रसग्रंथ के अवलोकन और अध्ययन की कोई अपेक्षा नहीं होगी—

बांचि आदि ते अंतलों यह समुझै जो कोई।
ताहि और रसग्रंथ की फेर चाह नहि होइ॥

वही, ४

पर यह उनका मिथ्या गर्व ही है।

११—रूपसाहि : रूपविलास (ह० लि०)

रूपसाहि ने वि० स० १८१३ में रूपविलास नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ रचा था—

गन ससि वसु ससि ता जानिए संवत अंक प्रकास।
भादों सुद्धें दसमी शनौ जनम्यौ रूप विलास॥

रूपविलास, १।१०

आप पन्ना के रहनेवाले थे और कायस्थ कमलनैन के पुत्र एवं बुदेलानरेश हिंदूपति के आश्रित कवि थे। यह ग्रथ १४ विलासों में विभक्त है तथा इसमें कुल ७२० छद हैं। रूपविलास का प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के याज्ञिक सग्रहालय में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। ग्रंथरचना के ४ वर्षों के बाद की यह प्रतिलिपि है। इसे अनेकागनिरूपक रीतिग्रथ ही मानना चहिए, क्योंकि इसमें काव्यलक्षण, छंद, नायिकाभेद, रस अलकार आदि विविध काव्यागों का निरूपण किया गया है। पाँचवें विलास से लेकर ११ वें विलास पर्यन्त रसवर्णन है। उसमें भी ६ विलासों में केवल नायिकाभेदों का विवरण दिया गया है।

१२—शिवनाथ : रसवृष्टि

शिवनाथ ने रसवृष्टि नामक रसग्रथ १८२८ विक्रम संवत् मे रचा था। उदयनाथ के रसचद्रोदय और शिवनाथ के रसवृष्टि नामक रसग्रंथों का समिलित प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सन् १८८२ ई० में हुआ था। इसकी प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के पुस्तकालय में उपलब्ध है। उदयनाथ के रसचंद्रोदयवाले खंड मे तो मात्र नायिकाभेदो का निरूपण है पर शिवनाथ के रसवृष्टि में नौ रसों का भी वर्णन किया गया है। रसवृष्टि में कुल १६ रहस्य हैं। प्रारंभ के १५ रहस्यों में तो नायिकाभेद, नखशिख, तनभूषण आदि रसोपादानों का उल्लेख है किंतु सोलहवें रहस्य में नव रस का वर्णन किया गया है। अतएव इसे सर्वरसनिरूपक रीतिग्रंथ मानना चाहिए।

१३—जनराज : कवितारसविनोद (ह० लि०)

कवितारसविनोद के प्रणेता जनराज जयपुर के निवासी थे और इनका जन्म वैश्य कुल में हुआ था। इनका असली नाम डेडराज था, जैसा इन्होंने स्वयं ग्रंथ के अत मे लिखा है। महाराज पृथ्वी सिंह इनके आश्रयदाता थे। 'कवितारसविनोद' एक सर्वरसनिरूपक ग्रंथ है। इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा के याज्ञिक संग्रहालय में इसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। इस ग्रंथ का रचनाकाल वि० सं० १८३३ है, जैसा इन्होंने स्वयं निर्दिष्ट करते हुए लिखा है—

अठारहि से तीतस भए सुभ संवत्त जेष्ठ सभा वेरु वषानौ
सेत सुपक्षि तिथू दसमी अरुवार महावर भोम सुजानौ॥
हस्त निपवृ जु सिद्धि सुजोग विषै जनराज कहे उर आनौ।
ये कविता रसग्रंथविनोद सपूरन मेद कियौ सुषदानौ॥

कवितारसविनोद, २४। ४४

इस प्रति का लिपिकाल संवत् १६०६ दिया हुआ है। इस ग्रथ मे कुल २४ विनोद हैं तथा ३०५ पन्ने।

१४—उजियारे कवि : रसचंद्रिका (ह० लि०)

ऐतिहासिकों के अनुसार उजियारे कवि ने जुगुलरसप्रकाश और रसचद्रिका नामक दो रसग्रथ रचे थे। 'जुगुलरसप्रकाश' देखने का अवसर तो मुझे नहीं मिला है, पर रसचद्रिका की खडित और जीर्णशीर्ण प्रति नागरीप्राचरिणी के याज्ञिक संग्रह में उपलब्ध है। इस ग्रथ में २५ प्रकाश तो पूरे हैं, १६ वें प्रकाश का थोड़ा सा अश ही विद्यमान है। शेष अंश कटा हुआ है। पता नहीं इस ग्रथ मे कुल कितने प्रकाश रहे होंगे। मुझे इसके कुल ८६ पन्ने देखने को मिले। इन्होंने अपने आश्रयदाता दौलतराम के लिये यह ग्रंथ लिखा है, जैसा कि प्रत्येक प्रकाश की पुष्पिका से ज्ञात होता है—

इति श्री रसचंद्रिकाया दौलतिराम विरचिताया—
रसांगीभाववर्णन पंचदश प्रकाशः।

रसचंद्रिका, १५ वें प्रकाश की पुष्पिका

यह एक रस-सामान्य-निरूपक रसग्रथ है। प्रत्येक रस को पृथक् पृथक् प्रकाश में लिखा गया है। इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता यह है कि परंपरागत अन्य आचार्यों के मत उद्धृत कर रससबधी अनेक समस्याएँ उठाई गई हैं और उत्तर के रूप में उनके अनेक समाधान भी प्रस्तुत किए गए हैं। यह प्रश्नोत्तर चाहे जितना भी सफल हुआ हो, पर दृष्टिकोण निस्सदेह नितांत विवेचनात्मक एवं वैज्ञानिक है। इतिहासज्ञ विद्वानों के अनुसार इस ग्रंथ का प्रणयनकाल वि० सं० १८३७ के अनंतर रहा होगा। स्वयं ग्रथकर्ता ने जिस अश मे रचनाकाल का निर्देश किया होगा, वह अश इस हस्तलिखित प्रति में फटा हुआ है।

१५—पद्माकर : जगद्विनोद

पद्माकर का रचनाकाल १८६७ वि० सं० के लगभग माना जाता है। पद्माकर ने कई पुस्तकें लिखी थी किंतु काव्यशास्त्र पर मात्र तीन रचनाएँ हैं—जगद्विनोद, आलीजहाप्रकाश और पद्माभरण। पद्माभरण तो अलंकारग्रंथ

है किंतु आलीजहाप्रकाश और जगद्विनोद में कोई तात्विक अंतर नहीं है। दो आश्रयदाताओं के नाम पर थोडे बहुत हेर फेर के साथ दोनों पुस्तकों को प्रस्तुत कर दिया गया है। अतएव पद्माकर का एकमात्र रसग्रंथ जगद्विनोद ही है। इस ग्रथ के अनेक प्रकाशन भी हो चुके हैं तथा अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी अनेक पुस्तकालयों और सग्रहालयों में सुरक्षित हैं (द्रष्टव्य--पद्माकरग्रंथावली, संपादक-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० स०, काशी, स० २०१६, सपादकीय पृ० १२-१८)। अब ना० प्र० स० की आकर ग्रथमाला में प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के द्वारा संपादित पद्माकर ग्रंथावली के एक अश के रूप में जगद्विनोद का अत्यत प्रामाणिक सस्करण उपलब्ध है। जगद्विनोद एक रस-सामान्य-निरूपक ग्रथ है, तथापि अन्य रसों की अपेक्षा शृ गाररस का अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है।

१६---बेनी प्रवीन : नवरसतरग

बेनी प्रवीन के नवरसतरंग कर रचनाकाल संवत् १८७४ है। इन्होंने स्वयं लिखा है--

> समय देखि दिग दीप युत सिद्धि चद्र बलपाइ।
> माघ मास श्री पंचमी श्री गोपाल सहाइ॥

नवरसतरंग, पद २७, पृ० ३

इस ग्रंथ का प्रकाशन प्राचीन कविमाला कार्यालय, काशी से सन् १९२५ में हुआ है। इसके सपादक हैं कृष्णविहारी मिश्र। इस पुस्तक मे कुल पदों की संख्या ५३३ और पृष्ठों की संख्या ७२ (भूमिका और परिशिष्ट को छोड़ कर) है। शिवसिंह सरोज में बेनी प्रवीन का जन्म सवत् १८७३ बताया गया है पर उनकी कृति के रचनाकाल (सवत् १८७४) को ध्यान में रखकर सरोजकार की मान्यता निराधार प्रतीत होती है। ग्रथ के शीर्षक को देखने से प्रतीत होता है कि इसमें नौ रसों का समानरूप से वर्णन किया गया होगा। पर वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। आरंभ के ४९७ पदों में तो शृंगाररस का वर्णन है और शेष ३६ पदों में अन्य रसों का। अतएव मुख्यतः यह एक शृंगार-रस-निरूपक ग्रथ है, फिर भी अन्य रसों की चर्चामात्र से इसे रस-सामान्य-निरूपक ग्रथ भी निर्दिष्ट किया जा सकता है।

१७---करन कवि : रसकल्लोल (ह० लि०)

रसकल्लोल का प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के सभा संग्रहालय में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। इस प्रति में कुल मिलाकर १८४ छंद तथा ३६ पृष्ठ हैं। इसका लिपिकाल १८९० विक्रम सवत् है--

इति श्री वंशीधरात्मज कवि करन विरचिते रसकल्लोले रस धुनि व्यंग्यादि-निरूपन नाम सपूर्न सुभमस्तु सवत् १८६० भाद्र मासे कृष्ण पदेकासी ।

रसकल्लोल, अतिम अश ।

यह एक अनेकागनिरूपक रीतिग्रथ है, जैसा स्वयं ग्रथकार ने अपनी रचना का उद्देश्य बताते हुए लिखा है—

रसगुनधुनि अरु लक्षना कविभेद मति लोल।
वालबोध हितकर सदा कीन्हो रस कल्लोल ॥

वही, पद स० ५

इस छोटे से ग्रंथ में भी करन कवि ने रस, ध्वनि, गुण, शब्दशक्ति, रीति और वृत्ति सभी काव्यागों का निरूपण कर दिया है। यहाँ तक कि तात्पर्या शब्द-शक्ति, जो रीतिग्रथों मे अत्यत विरल है, उसे भी ग्रथकर्ता ने नहीं छोड़ा है। इस प्रसग मे नायिकाभेद, सखी, दूती, ऋतुवर्णन आदि गौण विषयों का विशद उल्लेख न कर ग्रथ को अनावश्यक विस्तार से बचाया गया है।

१८—प्रतापसाहि व्यंग्यार्थकौमुदी और काव्यविलास (ह० लि०)

प्रतापसाहि का रचनाकाल संवत् १८००-१९०० के बीच माना जाता है। इनकी दो काव्यशास्त्रीय कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—व्यग्यार्थकौमुदी और काव्यविलास। 'रसचंद्रिका' नामक एक तीसरे रसग्रथ का सकेत भी स्वयं प्रतापसाहि ने अपने काव्यविलास में किया है—'अग्रे हास्यरसवर्णनम् रसचद्रिकायां। इति रसध्वनि। काव्यविलास ३।६१ (वृत्ति)'। किंतु यह ग्रथ अभी तक किसी के देखने मे नहीं आया है।

क—व्यंग्यार्थकौमुदी

इसका प्रकाशन वाराणसी सस्कृत यंत्रालय से सवत् १९३१ मे हो चुका है। भारतजीवन प्रेस, काशी से भी इसका प्रकाशन हुआ है। इसमे कुल १२७ पद और ३९ पृष्ठ हैं। इस रचना का मुख्य उद्देश्य व्यग्यार्थनिरूपण है और व्यग्यार्थ के माध्यम से ही नायिकाभेद और अलकारों पर प्रकाश डाला गया है। रस की चर्चा इस ग्रंथ मे नहीं है।

ख – काव्यविलास

इसकी हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी के सभा सग्रह में सुरक्षित है। इसी मे प्रतापसाहि ने रसनिरूपण किया है। 'धुनिरूपवर्णन' नामक तृतीय प्रकाश मे असलक्ष्य क्रमव्यंग्य ध्वनि के अतर्गत कुल ७४ पद्यों में रसनिरूपण किया गया है। यह ग्रंथ निःसंदेह ममट के काव्यप्रकाश की परंपरा का माना जा सकता है।

१९—चंद्रशेखर वाजयेयी : रसिकविनोद

पटियालानिवासी चंद्रशेखर वाजपेयी ने 'रसिकविनोद' नामक रसग्रंथ की रचना संवत् १९०३ में की थी—

संवत राम अकाश ग्रह पुनि आतमा विचार।
माघ शुक्ल सनि सप्तमी भयो ग्रंथ अवतार॥

रसिकविनोद, पद ४७७

महाराज नरेंद्र सिंह इनके आश्रयदाता थे। इस ग्रथ का प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी से सन् १८९४ ई० मे हुआ है। इसमे कुल ४७७ छंद तथा ६७ पृष्ठ हैं। वाजपेयी जी ने स्वयं इसे रस-सामान्य-निरूपक ग्रंथ कहा है—

बरनत नव रस रीत सों लक्षण लक्ष समेत।
कृपासिंधु सब सुकविजन लैहैं सोधि सहेत॥

रसिकविनोद, ३२

जो हो, पर रस विवेचन सामान्य कोटि का है। यद्यपि ग्रथकार का दावा है कि रसिकों के विनोदार्थ यह ग्रंथ लिखा गया है। तदनुसार ही उन्होंने ग्रंथ का शीर्षक भी रखा है।

२०—ग्वाल कवि : रसरंग (ह० लि०)

मथुरा वृंदावनवासी ग्वाल कवि ने वि० सं० १९०४ में रसरंग नामक रसग्रंथ लिखा था—

संवत वेद ष निधि ससी माधव सितपष संग।
पंचमी ससि को प्रकट हुआ ग्रंथ जु यह रसरंग॥

रसरंग, १। ७,पृ० २।

इसका प्रकाशन प्रायः अभी तक नहीं हुआ है। नागरीप्रचारिणी सभा के याज्ञिक संग्रह में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। इस प्रति का लिपिकाल संवत् १९२२ निर्दिष्ट किया गया है—

इति श्री रसरंगे ग्वालकवि विरचिते हास्यरसादि अष्टरस वर्णन अष्टम उमंग ८ समाप्तोऽयं संवत् १९२२ चैत्र शुक्ल १३ सनि दिने॥
रसरंग उमग ८ (अंतिम अंश]

इस ग्रथ में कुल ८ उमग हैं तथा १५३ पन्ने। रसनिरूपण ही रचना का मुख्य उद्देश्य है। ७ उमगों में शृंगाररस का सांगोपांग प्रतिपादन है तथा केवल आठवीं उमंग में अन्य रसों का अपेक्षाकृत संक्षिप्त उल्लेख है। इस ग्रंथ में भी रीतिपरंपरा के अनुकूल शृंगाररस को ही अधिक महत्व दिया गया है।

२१ – रसिकविहारी : काव्यसुधाकर

रसिकविहारी का असली नाम जानकीप्रसाद जी था। अपना उपनाम कहीं कहीं आपने 'रसिकेश' भी लिखा है। इनकी एकमात्र कृति (शास्त्रीय) काव्यसुधाकर है। काव्यसुधाकर का प्रकाशन युनाइटेड प्रीटिंग प्रेस, अहमदाबाद से सन् १८६६ ई० में हुआ है। इसकी प्रतियाँ अब पुराने पुस्तकालयों में ही मिलती हैं। नागरीप्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में इसकी प्रति उपलब्ध है। रसिकविहारी के निर्देशानुसार ग्रंथ का रचनाकाल सवत् १६१० है—

नभदृगग्रहससि संवत माघो मास।
भौमसुक्लयेकादसी भयो प्रकास ॥

काव्यसुधाकर, १।६

इसमें परंपरागत नौ रसों का निरूपण किया गया है। अतएव इसे रस-सामान्य-निरूपक रीतिग्रंथ ही मानना चाहिए।

२२—नंदराम : शृंगारदर्पण

नंदराम के रसग्रंथ का नाम शृंगारदर्पण है। इसकी रचना संवत् १६२७ में हुई थी, जैसा उन्होंने स्वयं अपने ग्रथ में निर्देश किया है—

संवत मुनि दृगनंद ससि शुचि सित दिग भृगुवार।
राधाकृष्ण विहारमय लियो ग्रंथ अवतार ॥

—शृंगारदर्पण ।१।१२

इसका प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, काशी से १८६० ई० में हुआ है। यह ग्रथ दस प्रकाशों में विभक्त है तथा इसमें कुल १५६ पृष्ठ हैं। अंतिम दो पृष्ठों में नंदराम ने अपने स्फुट कवित्तों का संग्रह किया है। यद्यपि इस ग्रंथ में नौ रसों का निरूपण किया गया है, फिर भी शृंगार की रसराजता को ध्यान में रखकर ही इसका नाम शृंगारदर्पण रखा गया है—

आलंवित शृंगाररस नौ रस को सिरताज।

—शृंगारदर्पण, १।४ (पूर्वार्ध)

आरंभ के नौ प्रकाशों में केवल नायिकाभेद एव रसोपकरणों की चर्चा है तथा मात्र दसवें प्रकाश में सभी रसों के लक्षण, भेद, उदाहरण आदि दिए गए हैं। अतएव विषय प्रतिपादन असंतुलित है।

२३—लछिराम : महेश्वरविलास

अवध के निवासी लछिराम की रसशास्त्रीय रचना 'महेश्वरविलास' है। इसका प्रणयन ठाकुर महेश्वरसिंह बहादुर की आज्ञा से सवत् १६४७ में हुआ था—

'इति श्रीमन्महाराज श्रीठाकुर महेश्वर सिंह बहादुरजू को आज्ञानुसार

श्रीअवधनेवासी श्री लछिराम विरचितो महेश्वरविलास ग्रन्थः संपूर्णं शुभं भूयात् ॥

महेश्वरविलास, चतुर्थ, विलास की पुष्पिका

इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी से सन् १८६३ ई० में हो चुका है।

नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय मे इसकी प्रति उपलब्ध है। संपूर्ण ग्रंथ चार विलासों में विभक्त है और इनमें क्रमशः ५१, ३७३, १२१ और ५१० पद हैं। अंतिम विलास में रसनिरूपण है और उसके पूर्व नायिका वर्णन आदि। इसे साधारण कोटि का रसग्रथ मानना चाहिए।

२४—जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' : रसरत्नाकर

क—भानुजी के 'रसरत्नाकर' का प्रथम सस्करण जगन्नाथपुर, विलासपुर से मन् १९१९ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके १०९ पृष्ठों और ९ भागों में रसों का सांगोपांग उल्लेख एवं विवेचन है। रीतिकालीन परंपरा के प्रभाव के साथ इसमें अर्वाचीनता का पुट भी विद्यमान है। इसमे विषयबोध के लिये गद्य और पद्य दोनों का सहारा लिया गया है। गद्य खडी बोली में है और पद्य ब्रजभाषा में। स्वरचित ब्रजभाषा पद्य मे इन्होंने लक्षण और उदाहरण दिए हैं पर कहीं-कहीं खड़ी बोली गद्य में भी इन्होंने लक्षण प्रस्तुत किए हैं। विवेचन, भाष्य एवं पूर्ववर्ती आचार्यों की मान्यताओं के उल्लेख में भी इन्होंने खड़ी बोली गद्य का आश्रय ग्रहण किया है। ग्रंथ के आरभ मे रससबधी सभी पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी रूपातर भी दे दिए गए हैं। इन्हीं कारणों से भानुजी रीतियुगीन आचार्यों की श्रेणी से भिन्न प्रतीत होते हैं। तथापि जितनी भिन्नता शैली में है, उतनी विचारों में नहीं।

ख—भानुजी ने 'नायिकाभेद शकावली' नामक एक दूसरा ग्रथ भी लिखा था। इसका प्रकाशन भी जगन्नाथपुर, विलासपुर (मध्य प्रदेश) से संवत् १९८२ में हो चुका है। ग्रथ के शीर्षक से स्पष्ट है कि यह एक नायिकाभेद विषयक ग्रंथ है। इसमें विविध सस्कृत और रीतिकालीन रसग्रथों के अनुसार नायिका-भेदों की तालिका बनाकर प्रस्तुत की गई है। पर स्वय भानुजी ने सस्कृत के किसी आचार्य के स्वर में स्वर मिलाते हुए ग्रथ के ४९वें पृष्ठ में लिखा है—

क्वचिदन्योन्य साकर्यमासा लक्ष्येषु दृश्यते।
इतरा अपि संख्यास्तानोक्ता विस्तर शंकया ॥

नायिकाभेद शकावली, पृ० ४९

२५—विहारीलाल भट्ट : साहित्यसागर

भट्टजी ने दो भागों में साहित्यसागर नामक ग्रंथ रचा है। इसका प्रकाशन संवत् १९९४ में गंगा ग्रंथागार, लखनऊ से पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी के संपादन के साथ हुआ है। प्रथम भाग में ६ तरंग और द्वितीय भाग में ९ तरंग हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर १५ तरंगों में ग्रंथ के दोनों भागों का समापन हुआ है। ६ठी से ८वीं तरंगों तक तथा १३वीं तरंग में रसविषयक सामग्री को प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में अनेकविध काव्यांगों का निरूपण हुआ है—राजवंशवर्णन, साहित्य, छंदवर्णन, गणागण प्रकरण, शब्दार्थनिर्णय, शृंगार वर्णन, शृंगारेतर रसों का वर्णन, गुण वर्णन, शब्दालंकार निरूपण, अर्थालंकार निरूपण, उभयालंकार, आध्यात्मिक नायिका भेद, निर्वाण निरूपण, दान प्रकरण आदि। अतएव इसे अनेकांगनिरूपक रीतिग्रंथ की कोटि में ही रखना चाहिए।

२६—कविराज सुंदर : सुंदर शृंगार

कविराज सुंदर ने संवत् १६८८ में सुंदर शृंगार की रचना की थी, जैसा उन्होंने स्वयं ही ग्रंथ में लिखा है—

> संवत सोरह सै बरस बीते अट्ठासीति।
> कातिक सुदि षष्ठी गुरुहिं रच्यौ ग्रंथ करि प्रीति॥

सुंदर शृंगार, पृ० ३,

इस पुस्तक का प्रकाशन भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १८९० ई० में हो चुका है, पर इसकी प्रति दुर्लभ है। ना० प्र० सभा के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इस पुस्तक का विभाजन परिच्छेदों में नहीं है। पद संख्या भी १ से १०० तक दे देने के बाद पुनः १ से प्रारंभ की गई है। इसमें कुल ११२ पृष्ठ हैं। इसमें मुख्यतः शृंगाररस के अंतर्गत नायिकाभेदों का निरूपण किया गया है। ग्रंथकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया है कि संस्कृत ग्रंथों के आधार पर ही यह पुस्तक लिखी गई है—

> सुरवानी याते करी नरवानी मे ल्याइ।
> जाते मगु रसरीति को सब पै समुझयो जाइ॥
> यह सुंदर सिंगार की पोथी रची विचारि।
> चूक्यो होइ जु कवि कछू लीजो तहाँ सुधारि॥

सुंदर शृंगार, पृ० ११२

अतएव इसे नायिकाभेदविषयक ग्रंथ ही मानना चाहिए।

केशवपूर्ववर्ती कतिपय रसग्रंथ

२८—कृपाराम : हिततरंगिनी

कृपाराम ने वि० स १५९८ में हिततरगिनी की रचना की थी। इसका प्रकाशन जगन्नाथदास रत्नाकर के संपादन के साथ भारतजीवन प्रेस, काशी से सवत् १९५२ में हुआ है। नायिका भेदों का स्वतंत्र उल्लेख ही ग्रंथ का मुख्य प्रतिपाद्य है।

२८—सूरदास : साहित्यलहरी

सूरदास ने 'साहित्यलहरी' नामक रीति ग्रंथ संवत् १६१७ अथवा १६२७ में भिन्न भिन्न विद्वानों की धारणा के अनुसार लिखा था। कई विद्वान इसे सूरदास की रचना नहीं भी मानते हैं। इसमें नायिकाभेद, अलंकार, संचारी भाव और रसभेद प्रतिपादित किए गए हैं। इस ग्रथ के अब तक कई संस्करण हो चुके हैं। पुस्तक भडार, लहेरिया सराय से सवत् १९९६ में इसका प्रकाशन हुआ है। साहित्य संस्थान, मथुरा से सन् १९६१ ई० मे इसका सुंदर प्रकाशन किया गया है, लाइट प्रेस बनारस और नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से सरदार कवि की टीका के साथ इसके प्रकाशन क्रमशः १८६६ ई० और १८९७ ई० में हुए थे। १८९२ ई० में भारतेंदु हरिश्चद्र सगृहीत सटीक साहित्य लहरी, खड्गविलास प्रेस बाकीपुर से भी प्रकाशित हुई थी। किंतु अधिकाश प्रकाशन आज दुष्प्राप्य हैं। कुछ एक सभा पुस्तकालय में प्राप्त हैं।

[२९] नन्ददास : रसमंजरी

नददास ने १६२० वि० सं० के आसपास इस ग्रंथ की रचना की थी। संवत् २००६ में ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित तथा नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'नददास ग्रंथावली' मे यह ग्रथ भी समाविष्ट है। भानुदत्त की रसमजरी के आधार पर ही इसमें नायिकाओं विवरण दिया गया है।

३०—कवि रहीम : बरवै नायिका-भेद

संवत् १६४० के आस पास हो कवि रहीम ने बरवै नायिका भेद की रचना की थी। 'रहीम रत्नावली' के अतर्गत यह पुस्तक भी अंतर्मुक्त। प० मायाशकर याज्ञिक के सपादन के साथ रहीम रत्नावली का प्रकाशन साहित्य सेवा सदन, काशी से हो चुका है। इसके कई संस्करण अब तक निकल चुके हैं। इस पुस्तक में दोहे के माध्यम से नायिकाओं के लक्षण तथा बरवै छद में उनके उदाहरण दिए गए हैं। अतएव इसे नायिका-भेद-निरूपक एक शृंगार-रस-ग्रंथ ही मानना चाहिए।

*